प्रारंभिक रचनाएँ

तीन भागों में संपूर्ण—

पहले दो भागों में कविताएँ, तीसरे भाग में कहानियाँ

सन् १९२९—१९३३ में

लिखित

बच्चन की अन्य प्रकाशित रचनाएँ.

१ हलाहल

२ बंगाल का काल

३ सतरंगिनी

४ आकुल अंतर

५ एकांत संगीत

६ निशा निमंत्रण

७ मधुकलश

८ मधुबाला

९ मधुशाला

१० खैयाम की मधुशाला

११ प्रारंभिक रचनाएँ—पहला भाग—कविताएँ

१२ प्रारंभिक रचनाएँ—तीसरा भाग—कहानियाँ

इनके विषय में विशेष जानकारी के लिए पुस्तक के अंत में देखिए। नवीनतम कृतियों के लिए लीडर प्रेस, प्रयाग से पत्र-व्यवहार कीजिए।

प्रारंभिक रचनाएँ

दूसरा भाग—कविताएँ

बच्चन

विज्ञापन

आज 'प्रारंभिक रचनाएँ'—द्वितीय भाग का दूसरा संस्करण उपस्थित करते समय हमें बहुत प्रसन्नता हो रही है।

बच्चन की प्रारंभिक कविताओं का प्रथम संग्रह 'तेरा हार' के नाम से सन् १६३२ में प्रकाशित हुआ था। उनकी दूसरी प्रकाशित कृति 'मधुशाला' को देखकर लोगों को आश्चर्य हुआ। इसका कारण था। दोनों के विचार, भाव, भाषा, कल्पना, शैली—सभी में भारी अंतर था। लोग सोचते थे कि 'तेरा हार' का लेखक 'मधुशाला' के गायक के रूप में कैसे अवतरित हो गया। उन्हें क्या पता था कि 'तेरा हार' के पश्चात् और 'मधुशाला' के पूर्व कवि 'तेरा हार' जैसे पाँच संग्रह तैयार कर चुका था। यही कारण था कि 'तेरा हार' का पाठक जब 'मधुशाला' पढ़ना आरंभ करता था तो उसे दोनों के बीच एक बड़ी भारी खाईं दिखाई पड़ती थी।

१६४३ में बच्चन की समस्त प्रारंभिक रचनाओं को दो भागों में प्रकाशित करके हमने इसी खाई को भरने का काम किया था। बच्चन के नित नूतन कविता के पत्र-पुष्पों को देखकर उसके बीज को जानने और समझने की उत्सुकता उनके पाठकों को स्वाभाविक ही रही है। यही कारण है कि उनकी प्रारंभिक रचना 'तेरा हार' के दो संस्करण समाप्त हो चुके थे पर उसकी माँग फिर भी बनी हुई थी। 'तेरा हार' से लोगों की जिज्ञासा केवल अंशतः संतुष्ट होते देखकर हमने बच्चन की समस्त प्रारंभिक रचनाओं को प्रकाश में लाने की आयोजना की और संग्रह के प्रथम भाग में 'तेरा हार' को भी सम्मिलित कर लिया। वह अब स्वतंत्र रूप से नहीं छपता। दूसरे भाग की समस्त कविताएँ नई थीं पर प्रथम भाग के ही समान दूसरे भाग का एक बड़ा संस्करण दो

वर्षों के अंदर समाप्त कर पाठकों ने इसकी आवश्यकता और औचित्य को सिद्ध कर दिया है।

प्रथम भाग कुछ पहले ही समाप्त हो चुका था और हम उसका दूसरा संस्करण प्रकाशित कर चुके हैं। आकार-प्रकार में यह दूसरा भाग पहले के समान है।

जहाँ तक संभव हो सका है कविताओं को रचना-क्रम में रखने का प्रयत्न किया गया है। आशा है कवि के व्यक्तित्व और कला के विकास में रुचि रखनेवाले इस संग्रह से पर्याप्त लाभ उठा रहे हैं।

किसी कवि की नवीनतम रचनाएँ भले ही इस बात को बताएँ कि उसने अपनी कला में कितना ऊँचा स्थान प्राप्त किया है लेकिन यह उसकी पहली और प्रारंभिक रचनाएँ ही हैं जो यह बता सकेंगी कि कवि ने कहाँ से चलकर और किन प्रयत्नों द्वारा वह उच्चता प्राप्त की है। बच्चन की समस्त रचनाओं में जो उनके व्यक्तित्व की एकता है वह उनकी नवीनतम कृति को भी उनकी पहली रचना से संबद्ध करती है। हमारी यह धारणा है कि आप उनकी नई रचनाओं का पूर्ण आनंद तभी उठा सकेंगे जब आप उनकी प्रारंभिक रचनाओं से भी भिज्ञ होंगे।

एक शब्द हम काव्य पारखियों से भी कहना चाहेंगे। यदि यह कविताएँ समय से प्रकाशित होतीं तो उनकी विशेषताओं पर दृष्टि जानी चाहिए थी। आज इन्हें खोजने का समय नहीं है। आज तो उनकी संभावनाओं को देखना चाहिए। कवि की नवीनतम कृतियों को दृष्टि में रखते हुए इनकी संभावनाओं पर किसी को संदेह न होगा। हमें पूर्ण विश्वास है कि रचनाक्रम में इन्हें देखनेवाले इनसे किसी तरह निराश न होंगे।

'प्रारंमिक रचनाएँ' के दूसरे संस्करण के साथ हम आपको एक नई सूचना देना चाहते हैं। 'प्रारंभिक रचनाएँ' का एक तीसरा भाग भी हम प्रकाशित कर रहे हैं। इसमें बच्चन की कहानियाँ संगृहीत हैं। ये कहानियाँ 'प्रारंभिक रचनाएँ' की कविताओं की समकालीन हैं, इससे इनका यही नाम देना हमको उचित प्रतीत हुआ। इन्हीं कहानियों को 'हृदय की आँखें' के नाम से प्रकाशित करने का विज्ञापन सुषमा निकुंज, प्रयाग से हुआ था, परंतु किसी कारण से वह छप न सका। अब यह आपके सामने है। आशा है बच्चन साहित्य की यह नवीन वृद्धि आपको रुचिकर एवं मनोरंजक सिद्ध होगी।

—प्रकाशक

प्रिय श्रीकृष्ण और चंद्रमुखी को

सूची

प्रारंभिक रचनाएँ

दूसरा भाग—कविताएँ

गांधी जी के विलायत-प्रस्थान पर भारत माता की विदा

सुना है जब से मेरा लाल
विलायत जाने को तैयार,
सिकुड़ता जाता है हृत्पात्र,
उमड़ती आती है जल-धार।

हृदय अथवा मेरा सुकुमार
सुकोमल विरह-वह्नि की याद
से हुआ जाता तरलीभूत,
नयन तक लाता नीर - विषाद।

न सहना पड़ता पुत्र - वियोग
मुझे ही जग में पहली बार,
यशोदा, कौसल्या ने पुत्र-
वियोग सहा, प्रसिद्ध संसार।

पुत्र उनके थे ईश्वर - रूप,
रहे थे वे अपने ही देश;
हमारा दुर्बल मानव लाल
जा रहा पार समुद्र विदेश।

कहूँ यदि उनसे ज्यादा दुःख
मुझे, तो है न उचित क्या बात?
सुना जब से जाता है लाल
हो रहा अश्रु निरंतर पात*।

अभी जब इतना मुझको दुःख
दे रहा ध्यान विरह का क्रूर,
दशा क्या होगी 'मोहन' लाल
आँख से जब जाएगा दूर।

---

* गांधी जी जिस दिन जाने को थे, बंबई में भीषण वर्षा हुई थी। एक सभा में गांधी जी ने भीगती हुई जनता को भाषण दिया था।

हृदय माता का ममतापूर्ण
बहुत है—तुमको था यह ज्ञात,
इसी से अंतिम दिन तक, पुत्र,
छिपा रक्खी जाने की बात* ।

बहुत पहले से यदि मैं, लाल,
तुम्हारा जाना लेती जान,
तभी से रहती नित्य उदास,
तभी से रो-रो देती प्राण ।

किंतु यदि हुआ न तब से दुःख
हृदय में अब है एक मलाल—
विदा होने का तुझसे, पुत्र,
मुझे कितना थोड़ा सा काल ।

लगा लूँ आ मैं तुझको, पुत्र,
धड़कते दिल से बारंबार,
निकल जो मानो तेरे साथ-
साथ जाने को है तैयार ।

---

* गांधी जी की राउंड टेबिल कानफ़रेंस में जाने की बात अंतिम दिन तक निश्चित न हुई थी। जहाज़ पकड़ने के लिए उन्हें स्पेसल ट्रेन से बंबई पहुँचाया गया था ।

परम पुलकित ये मेरे हाथ
दबाते तुझे न सीने, आह !
खड़े पलकों में कंपित अश्रु
नयन की रोक रहे हैं राह ।

हृदय तुम दृढ़ता लो अब धार,
और नयनों तुम रक्खो ध्यान,
न आँसू एक बहे इस काल,
लाल का है मंगल - प्रस्थान ।

पोत पर होने को आरूढ़
चले जब मेरा 'मोहन' लाल,
शकुन मंगल-सूचक सब ओर
दिखाई पड़ते हों उस काल ।

सिंधु से भरकर घट में नीर
सुहागिन आती हो उस काल,
चला आता हो माली एक
लाल फूलों की लेकर माल ।

पक्षियाँ श्यामा, श्यामलकंठ
पड़ें दिखलाई बाईं ओर,
सामने से आते हों गाय,
बैल, बछड़ों के सुंदर ढोर।

चबाते आते हों हर एक
सिंधु-की हरी-हरी सी घास,
किनारे फुदक रही हों मीन,
पकड़ जाने का जिन्हें न त्रास।

भरा हो तुम्हें सुखों से मार्ग,
रहे मौसम रुचि के अनुसार,
न सागर हो पाए विक्षुब्ध,
न बह पाए उद्दंड बयार।

तुम्हारी गोद सौंपती, सिंधु,
आज मैं अपना मान - गुमान,
लगा रक्खी है जिससे आश
पूर्ण होने की सब अरमान।

हमारा नन्हा, नाज़ुक लाल
जिसे पाला है मैंने नाज़
उठाकर बड़े-बड़े, हे सिंधु,
हिलाना उसका नहीं जहाज़।

सिंधु क्यों बैठे हो चुपचाप,
दिलाते क्यों न मुझे विश्वास
वचन से, 'अपना छोटा लाल
सुरक्षित समझो मेरे पास'?

विनय - विनती क्या मेरी, सिंधु,
सभी ये हों जाएँगी व्यर्थ?
सोचते हो करने को कौन
दीन माता पर बड़ा अनर्थ?

हठी तुम, किसे नहीं मालूम,
विनय से मानी किसकी बात;
मनाने को पर तुमको, सिंधु,
मुझे हैं और न विधियाँ ज्ञात।

न है कुंभज - सा मेरा पेट,
तुम्हें धमकी दूँ करके पान
सुखाऊँगी, न हमारे पास
राम से धरे अग्नि के बाण।

हमारा कहता 'मोहन' लाल,
सभी में भरा भलाई सार;
उसी से करती आज अपील,
दिलाकर याद, किए उपकार।

सिंधु क्या वह दिन तुझको याद
सृष्टि का जब था केवल भोर,
पड़े उत्तुंग तरंगों बीच
देखते थे तुम चारों ओर,

कहीं क्या है कोई आधार;
अपरिमित जल फैला सब ओर
तुम्हारी लाचारी को देख
मारता था ठट्टे कर शोर।

कर दिए थे ढीले प्रत्यंग
तरंगों ने तुमको झकझोर,
तैरने को जब तुममें और
न था बाक़ी कुछ बल, कुछ ज़ोर।

उस समय शैल हिमाचल-शृंग-
रजत सिंहासन पर आसीन
देखती थी अथाह जल बीच
दशा यह तेरी करुणा-पीन।

दया के भावों से उस काल
हो उठा मेरा हृदय विभोर,
दिया फैला तब तुझ तक, सिंधु,
वेग अपने अंचल का छोर।

आज भी जिसे बना आधार
खड़ा है यद्यपि तू हो मौन,
हमारा तुझपर जो उपकार
भला है नहीं जानता कौन?

न दुनिया की - सी तेरी नीति—
साथ उपकारी के अपकार;
कुशल 'मोहन' पहुँचे उस पार
कुशल 'मोहन' लौटे इस पार।

किया है मैंने अब तक जान
नहीं तेरा कुछ भी अपकार,
जहाँ तुझसे मिलती हूँ, सिंधु,
सरल सीधा रखती व्यवहार[1]।

और देते हैं तुझको कष्ट
मीन सी तेरी आँख निकाल,
किंतु मैं तो अपनी ही मीन
नदों से देती तुझमें डाल।

सिंधु, घुस तेरे घर में और
लूटते तेरा माणिक लाल;
यहाँ तो अपने लाल अनेक
दिए तेरे 'काले जल'[2] डाल!

१—हिंदुस्तान के समुद्री किनारे कटे हुए नहीं हैं। २—काला पानी।

कृतघ्नी सागर अब भी मौन,
न उसका मन मैं पाई जान;
विदा हो मुझसे मेरा लाल
सुशोभित करता है जलयान।

बने इसपर भी यदि विक्षुब्ध
विनय कुछ सिंधु न मेरी मान,
तुम्हीं दृढ़ता दिखलाना, पोत,
नाम पाया है 'राजस्थान'[1];

जहाँ का कण-कण है संदेश
एक देता दिन-रात पुकार—
रहो चट्टानों से दृढ़ वीर,
प्रबल चाहे जितनी हो धार!

न हो तुम सचमुच राजस्थान,
किंतु कहलाते ऐसा आज;
लिया है जब तुमने यह नाम,
निभाना भी तब उसकी लाज।

१—गांधी जी जिस जहाज़ से विलायत गए थे उसका नाम 'राजपूताना' था।

हिले यदि थोड़ा भी तुम, पोत,
कष्ट पाकर होगा बेहाल
हमारा मुट्ठी भर के हाड़
का बना दुबला - पतला लाल।

पवन, मैं तुझे बुलाकर आज
चाहती हूँ ले तू भी जान,
सिंधु पर किए गए उपकार
से नहीं कम तुझपर एहसान।

थाम कर तेरा हाथ समीर,
घुमाना सरिताओं के कूल
सभी ऋतुओं में प्रातःकाल,
हमारा तू न सकेगा भूल।

ग्रीष्म की कठिन ताप के कष्ट
बना जब करते हो बेहाल,
तुम्हारी ठंढी करती देह
घने तरु के नीचे बैठाल।

दिवस का होता है जब अंत,
पहुँचता शीतल संध्या काल,
झुलाती तुझको हूँ तब, वायु,
बिठा अपने वृक्षों की डाल।

पवन, मेरी बागों में खूब
किए हैं तुमने मौज - बिहार,
सुगंधित की है अपनी देह
लगा सुमनों का सौरभ सार।

तुम्हें ही मदिरा-सा कर पान
क्षुब्ध हो जाता है जलनाथ;
याद हों यदि मेरे उपकार
कभी मत देना उसका साथ।

सिंधु खुद आए तेरे पास
तुझे यदि करने मद-सा पान,
रोकना उसे जोड़कर हांथ
लगे धरना जैसे दूकान।

करोगे, पवन, अगर यह बात
हमारा तो है ऐसा ध्यान,
तुम्हारा बड़ा पुराना मित्र
तुम्हारी विनती लेगा मान।

कभी कौतूहल वश भी लाल
जहाँ मत जाना, तीव्र समीर,
उड़ेगा ढकता है जो वस्त्र
लाल का मेरे नग्न शरीर।

पवन के पुत्र, सफलता मूर्ति,
देवता मैंने तुमको मान
बहुत दिन की है पूजा-भक्ति,
माँगती आज एक वरदान।

पिता से अपने कर दो आज
शिफ़ारिश मेरी, रक्खें ध्यान
हमारी विनती का सुकुमार,
मुझे विश्वास जायँगे मान।

हृदय में बैठे - बैठे देव,
दिलाते हो क्या मुझको आश;
मुझे होता जाता विश्वास,
पूर्ण होगी मेरी अभिलाष।

लाल की यात्रा हो सुखपूर्ण,
रहे ऋतु इच्छा के अनुकूल,
गरजना हो न पवन को याद,
लरजना सागर जाए भूल।

सुना है, जाता है जिस देश
बड़ा सुकुमार हमारा लाल,
सदा ठंढा रहता वह देश,
शीत का बहुत निकट है काल।

पहनकर मोटे ऊनी वस्त्र
बचाते देह वहाँ के लोग,
मुझे भय, हो न हमारे लाल
नग्न-तन को सरदी का रोग।

विनय है, सूरज तुमसे आज
जहाँ हो मेरा प्यारा लाल,
गरम किरणें अपनी दो-चार
सदा तुम उसपर रखना डाल।

बहुत आई हूँ तेरे काम
पड़े जब तुझपर संकट-शूल,
हमारे तुमपर जो उपकार
कभी भी तुम न सकोगे भूल।

राहु से हो जाने पर ग्रस्त
तुम्हें जब होता कष्ट महान,
तुम्हारा मैं करती उद्धार
स्वर्ण-चाँदी का देकर दान।

गर्मियों में जब हो उद्विग्न
ताप से आते मेरे पास,
सुखा तब अपनी नदियाँ-झील
बुझाती हूँ मैं तेरी प्यास।

युगों से तेरी पुत्री सूर्य,
खेलाती हूँ मैं अपनी गोद,
तुम्हारी याद गई है भूल
उसे इतना देती हूँ मोद।

झुलाती हूँ मैं उसको फूल-
पालने जो हैं झालरदार,
पिलाती हूँ मैं उसको दूध
चढ़ाती हूँ फूलों का हार।

मिल गए समझूँगी, हे सूर्य,
सौगुने हो मेरे उपकार,
लाल पर यदि तू रक्खे गर्म
चार दिन अपनी किरणें चार।

व्योम, सुनती हूँ तुम उस देश
कमल-सा लाल जहाँ सुकुमार
जा रहा, नित्य गिराते ओस,
गिराते हो ऋतु शीत तुषार।

हठीला मेरा 'मोहन' लाल
बिताया करता अपनी रात,
खुली जगहों में सोकर नित्य
न जब तक होती हो बरसात।

व्योम है विनती तुमसे आज,
रहे जबतक मोहन उस देश
भिगोना उसे न ओस-तुषार,
स्वच्छ नित रखना अपना वेश।

किए मैंने हैं अगणित यज्ञ,
वास जिनका ऊपर को भेज
परम पावन की तेरी देह,
सुगंधित तेरी नीली सेज।

अँधेरी रातों में, हे व्योम,
न तारे तेरे हों पथभ्रष्ट,
उठाने का आकाशी दीप
हज़ारों मैं करती हूँ कष्ट।

हमारे कितने मधुर विहंग,
मनोहर मादक जिनका गान,
शब्द से अपने देते गूँज
तुम्हारा भयप्रद गृह सुनसान।

मुकुर-सी नदियाँ झीलें देख
हमारी, करते हो शृंगार,
चार दिन रक्खो स्वच्छ स्वरूप,
बड़ा होगा मुझपर उपकार।

सुखों से पूर्ण विदेश-निवास
लाल का मेरे हो सुकुमार,
सूर्य चमके उसपर हो गर्म,
गिराए व्योम न ओस-तुषार।

न मोहन पाएगा कुछ कष्ट
प्रकृति से होता जब विश्वास,
समाता मेरे मन सुकुमार
मनुष्यों से कष्टों का त्रास।

अनेकों शत्रु गणों के बीच
सुसज्जित अस्त्र-शस्त्र के साथ
हमारा नन्हा दुबला लाल
जा रहा केवल खाली हाथ।

बुलाया है कहकर मेहमान,
शत्रु का मुझे नहीं विश्वास,
इसी से धोखा खाया बार
कई, मेरा साखी इतिहास।

नहीं पाएगा मौका शत्रु
करे कुछ तुमपर कुत्सित कृत्य,
कोटि छाछठ ये देंगी आँख
तुम्हारे ऊपर पहरा नित्य।

तुम्हारी सरल मधुर मुसकान,
तुम्हारी हँसी विचित्र पवित्र,
सभी का लेगी तन-मन जीत,
शत्रुओं को कर लेगी मित्र।

तुम्हारा चर्खा, प्यारे पुत्र,
सुदर्शन का ले - ले अवतार,
शत्रुओं का मत काटे शीश,
शत्रुता का करदे संहार।

देख इँगलैंड, लाल की शक्ति,
हमारी शुभ कामना अमान
लाल की रक्षा में तल्लीन
रहेगी, तू भी रखना ध्यान।

लाल पर हँसें न तेरे पुत्र,
करें मत बातों से अपमान,
न कोई देखे टेढ़ी आँख,
न कोई दुख पहुँचाए जान।

न जब तक लौट हमारा लाल
भवन में सकुशल दे पग धार,
तुम्हारे ऊपर, ऐ इँगलैंड,
लाल की रक्षा का है भार।

दिया तृण-सा भी उसको कष्ट,
किया यदि उसका बाँका बाल
एक भी, आई उसके आँच
रोम पर भी, तो रखना ख्याल।

हमारी खेल चुके हैं गोद
महाराणा से वीर महान,
शिवाजी और गुरू गोविंद,
बली हैदर, टीपू सुल्तान।

शांति का मैं भूलूँगी पाठ,
करूँगी रणचंडी - सा नाद,
प्रज्वलित क्रोध-अग्नि में वेग
तुम्हें मैं कर दूँगी बर्बाद।

संधि का जब हममें संबंध
करूँगी मैं न युद्ध की बात,
किंतु यह पक्की मेरी आन
चाहिए तुमको रखना याद।

तुम्हें मैं करती हूँ आगाह
कभी भी भूल न करना ख्याल—
सभी गाँधी-से मेरे पुत्र,
भगत-से अब भी जनती लाल।

समय क्यों ऐसा आए किंतु,
कुशल से लौटे मेरा लाल,
कुलकता जिसका मुखड़ा देख
हृदय मेरा हो उठे बहाल।

लाल लौटे फिर मेरी गोद
विजय का लिए खिलौना साथ,
सफलता से प्रसन्न मुख देख
उसे दूँ आशिष सिर धर हाथ।

गांधी जी के जन्मदिन पर भारत माता की बधाई

अहे, दो अक्टूबर है आज,
जन्मदिन मोहन का है आज,
प्रकृति, तू हर्षित होकर खूब
सजा अपना अति सुंदर साज।

बुला ला जाकर मृदुल समीर,
तीव्र गति बहे छोड़कर नाज़,
कि जिसमें हर पत्ते से आज
नफ़ीरी की निकले आवाज़।

आ गई, पहले कर यह काम—
बादलों को दे यह संदेश—
करें नभ - नौबतख़ाने बैठ
नगाड़े पीट निनादित देश।

फूलकर लाएँ मादक गंध
प्रकृति कह दे फूलों से आज,
लताओं से कह दे वे नृत्य
करें फूलों के सजकर साज।

विहंगों से जा कह दे आज
खोलकर गले करें कल गान,
मधुर कलरव से सारी देश-
दिशाएँ हो जाएँ गुंजान।

प्रकृति, जा कश्मीरी के पास,
हमारी मालिन जो हुशियार,
बता आ उसको होगा आज
लगाना घर पर बंदनवार।

मिले 'आँधी' नौकरनी मार्ग
में तुझे यदि तो कहना, वेग
बुहारे आ सारा घर-द्वार
आज यदि नागा, खोया नेग।

महरियाँ गंगा-जमुना आप
करेंगी आकर काम सचाव,
आज भीतर-बाहर सब ओर
उन्हें करना होगा छिड़काव।

चाँद दिन को ही आए आज
लिए कूची, किरणों के तार,
चाँदनी से दे दिन में पोत
भीतरी घर की सब दीवार।

लगे जो फल हों मेरी बाग,
उन्हें माली गण लाएँ आज,
तोड़ ताज़े, मीठे पहचान
बाँस की डाल-डालियों साज।

आज मैं दीन जनों को न्योत
कराऊँगी भोजन भरपूर,
शुभाशिष जिनका मेरे लाल
को लगे जो बैठा जा दूर।

जन्मदिन आनंदित इस वर्ष
बना मुझको न सका भरपूर,
हृदय जल-जल उठता है आज
सोचकर मोहन मुझसे दूर।

किस तरह जन्म-दिवस की आज
बधाई पहुँचे अति सुकुमार
हमारे प्राण लाल के पास,
किस तरह, मेरा प्यार-दुलार।

खींच लो स्नेह-सलिल हे तप्त
हृदय के उठते तुम उच्छ्वास,
बनो बादल का टुकड़ा एक,
उड़ो प्यारे मोहन के पास।

दिवस में करना उसपर छाँह
सलोना जहाँ हमारा लाल,
महफ़िलों में जैसे छिड़काव,
बरसना उसपर संध्या काल।

पहुँच उसके कानों के पास
बूँद में कहना धीमे, 'स्नेह
विरहिणी मा का आया आज
बरसने तुझपर बनकर मेह।"

तुम्हारा जन्मदिवस है आज,
दूर तुम इसका मुझे मलाल,
भेजती हूँ आशीष स्वरूप
स्नेह - जल - मुक्ताओं की माल।

पकड़ बिठलाती अपनी गोद
पास यदि होते मेरे लाल,
फेरती सिर आशिष के हाथ
चूमती तेरे दोनों गाल।

लगा छाती से अपनी नम्र
तुझे कर लेती क्षण भर प्यार,
पिलाती दुह बकरी का दूध,
खिलाती फल - मेवे दो - चार।

मुझे तो आती इसपर लाज,
लिए अपने तुझ-सा सुकुमार,
सलोना पुत्र दिया जो भेज
विलायत सात समुंदर पार।

कामना मेरी मंगल - पूर्ण
रहे हर जगह तुम्हारे साथ,
तुम्हारे ऊपर छाया रूप
कोटि छाछठ हों मेरे हाथ।

हमारे अंचल का शृंगार
जिए युग-युग 'मोहन' भगवान !
छिने मत मुझ गुदड़ी का लाल
माँगती एक यही वरदान।

ले लिया क्रूर काल ने छीन
हमारा गुण, गौरव, संमान।
बचाना, हे भगवान कृपालु,
बुढ़ाई का मेरे अभिमान।

गया है तू मेरे जिस काम
सफलता उसमें देगी मोद
मुझे, पर यदि असफल हो, पुत्र,
कुलकते आना मेरी गोद।

मुझे है इसकी क्या परवाह,
मुझे क्या लाता मेरा लाल,
भरे या खाली आए हाथ
लगा लूँगी छाती तत्काल!

भले ही मैले, फटे कुवस्त्र
ढकें यह मेरी सूखी खाल,
चमकते हों यदि तुझ-से गोद
जवाहर, हीरे, मोती, लाल।

यदि

इस दुनिया की ज़ंजीरों में
अगर न मैं जकड़ा जाता,
काव्य-कल्पना के पंखों पर
कभी न चढ़कर उड़ पाता।

यदि न जगत में रूखी-सूखी
रोटी खाने को पाता,
देवों के सँग सुधा न पीता
और न सुर-तरु-फल खाता।

मैं हँसता पर मेरे हँसने
में क्या आकर्षण होता,
अगर न उस हँसने के पहले
फूट - फूटकर मैं रोता।

विश्व हृदय मुझको दे अपना
कभी नहीं मेरा होता,
यदि मैं अपनापन न भुलाकर
प्रथम हृदय अपना खोता।

जीवन-अनुभव-स्वाद न कटु यदि
मेरी जिह्वा पर आता,
कौन मधुर मादकता मेरे
गीतों के अंदर पाता।

सच्ची कविता

वह क्या जीवन जिसपर बहता
आहों का वातास न हो,
वह क्या जीवन जिसपर होती
आँसू की बरसात न हो।

वह क्या हृदय हरा सुख से जो,
सूखा जो दुख-त्रास न हो,
वह क्या मृतक-तृप्त जो, जिसमें
हरदम जीवित प्यास न हो।

क्या सुंदरता है सुमनों के
खिल-खिल हँसते अधर अहो,
यदि उनकी आँखों में बनकर
अश्रु ओस की बूँद न हो।

वह भोजन क्या जिसमें मीठा
हो, पर तीता स्वाद न हो,
वे क्या गाने हर्ष भरे जो,
जिनमें मधुर विषाद न हो।

दी बनावटी सुंदरता
कारीगर तूने फूल अहो,
पर वह क्या, यदि उसमें अपने
से आया मधुवास न हो।

उस कविता को क्या देकर के
नाम पुकारूँ कहो, कहो,
जिसके अंदर हो प्रयास, खग-
कल-स्वर स्वतः प्रवाह न हो।

कवि और देश भक्त

काव्य-कल्पना के डैनों पर
चढ़ मैं उड़ता जाऊँ,
बहुत दूर जाकर भी अपने
भारत को न भुलाऊँ।

कल्पवृक्ष के अमर फलों को
नित्य भले ही खाऊँ,
मातृ भूमि की खट्टी-कच्ची
बेरों पर ललचाऊँ।

नभ से चाहे चुन-चुन तारे
भौंह, कपोल सजाऊँ,
देख जहाँ पाऊँ भारत-रज
बरबस लोट लगाऊँ।

प्रकृति पुजारिन से सूरज की
नित्य आरती पाऊँ,
पर भारत - झोपड़ियों में लख
दीप शलभ बन जाऊँ।

बहुरंगी संध्या के घन पर
चाहे आसन पाऊँ,
मातृ भूमि की देखूँ तितली
बस पीछे पड़ जाऊँ।

नीहारों की ले फुलझड़ियाँ
नभ में नित्य घुमाऊँ,
मातृ भूमि के पाऊँ जुगुनूँ
उनकी याद भुलाऊँ।

गगन - सिंधु विद्युत - लहरों पर
खेलूँ, धूम मचाऊँ,
एक बूँद स्वाती गंगा जल
पर चातक - सा धाऊँ।

जीवन से ऊबा, इच्छा है
जन्म न फिर मैं पाऊँ,
पर यदि जन्म पड़े लेना ही
भारत में ही आऊँ।

हँसी और आँसू

हँसी रेणु - सी बिखरी आँसू
से न अगर सानी जाती,
कविता की सुंदर - सी प्रतिमा
भला कभी क्या बन पाती ?

बाल - व्योम प्रतिदिन हँसता है
युगल दंत निज दिखलाता—
सूरज और चंद्रमा का, पर
ज़रा नहीं मुझको भाता।

हर लेता है मन मेरा नभ
ज़रा मुसकरा जब देता,
अभ्र - पलक, विद्युत - नयनों से
पहले जब है रो लेता।

हृदय गगन का अति विशाल
गंभीर भावनाओं का घर
जीता नहीं सिंधु ने केवल
अधर - लहर से हँस-हँसकर।

हँस न लहर-अधरों से ही तो,
युक्ति सिंधु ने की फिर कौन ?
रहा गिराता नत नयनों से
अपने मोती - आँसू मौन।

हँसता है दिन - दिन भर मुझको
पर ऊषा ही है भाती,
ओस कणों में पहले रोकर
स्वर्ण किरण में मुसकाती।

रजनी भाती मुझे रात भर
चंद्र - प्रभा में मुसकाती,
तारक - मणियों के हैं आँसू
साथ - साथ में बरसाती।

गरमी में हिम ढके श्रृंग पर
सूर्य - किरण जब है रहती,
ऊपर उज्ज्वल गिरिवर हँसता,
अश्रु - धार नीचे बहती।

इसी हास - रोदन की प्रतिमा
ने मेरे मृदु मानस पर
बैठ - बैठकर बना लिया है
उसे एक साँचे - सा घर।

मेरी वाणी उस साँचे में
होकर सदा निकलती है,
रोदन में हँसती - सी कविता-
प्रतिमा बाहर ढलती है।

हृदय - हिमालय, ग्रीष्म - प्रेम,
रवि बन भावुकता जब आती,
हास - कल्पना मेरी आँसू-
कविता बनकर बह जाती।

भ्रातृ द्वितीया

बंधु - व्योम प्राची-मस्तक पर
छाई थी जब अँधियाली,
ऊषा - भगिनी ने आ करदी
उसपर टीके की लाली।

पुलकित होकर दिया व्योम ने
तारक मणियों का उपहार,
ग्रहण किया ऊषा ने हर्षित
हो निज अंचल धवल पसार।

ऊषा और व्योम प्रतिदिन यों
भैया - दूज मनाते हैं,
भ्रातृ - भगिनि संबंध मृदुल की
मुझको याद दिलाते हैं।

पर मेरी तो भ्रातृ - द्वितीया
साल - साल भर पर आती!
हर्षित करती हृदय साथ में
मधुर वेदना भी लाती।

बहिन, आज तुमने मस्तक पर
आशिष - तिलक लगाया है,
पर मुझ - दीन अकिंचन से
उपहार भला क्या पाया है।

बहिन मिली ऊषा - सी मुझको
कोमल ममता की अवतार,
क्यों न गगन - सी मुझमें चमकीं
तारक मणियाँ अमित अपार।

सकुचाते, शरमाते जिनको
अपनी अंजलि में लेता,
दूज - चंद्र से तेरे पद नख
के आगे बिखरा देता।

ऐ अनंत, अपने में ले
तुझमें मिल जाऊँगा अनजान,
मिलकर तेरे साथ हृदय का
पूरा कर लूँगा अरमान।

चलूँ गगन में मिलने, बहना,
तब आशीष मुझे देना,
बरसाऊँ जब तारक मणियाँ
ऊषा बन तुम ले लेना।

"पगली, तू फैलाती अंचल
अरे अभी से क्या लेगी!"
"स्नेह - कोष की वे सब मणियाँ
आँख तुम्हारी जो देगी।

इन पर कई नभों के तारे
एक निछावर में दे दूँ,
सबसे बड़ा मिले जग वैभव
इनको देकर कभी न लूँ।

क्यों कहते हो नहीं चमकते
हृदय - गगन मेरे तारे?
क्यों मन अपना छोटा करते
तुम मेरे भैया प्यारे?

अश्रुबिंदु में एक भरी है
स्नेह सरल आभा जैसी
सब तारक मणियाँ मिल जाएँ
पर न प्रकट होगी वैसी।

इन तारक मणियों से अपना
अंचल आज सजाऊँगी,
भ्रातृ-गर्व में होकर पागल
फूली नहीं समाऊँगी।"

भाई के खारे आँसू में
ऐसे चमकीले मोती,
कौन देखता यदि न जगत में
स्नेह-बहिन तुझ-सी होती।

दुनिया, तुझसे मान करूँ तो
तू मुझको ठुकरा देगी,
बहिन उपेक्षित हो तो भी वह
आशिष देने आएगी।

नीर - नम्र, गो - सरल बहन का
कैसे हो सकता वर्णन,
ऐसी बहनों के चरणों में
तन - मन - वाणी सब अर्पण ।

निरर्थक अश्रु

अरे यह दुनिया की बरसात!

बिजली-सा चमका यह जीवन,
गरजी मौत भयानक बन बन
वर्षा हुई, किया नयनों ने अश्रुबिंदु निष्पात ।

व्यर्थ यह अश्रुबिंदु निष्पात !

बादल, तुम जब रोए आकर
सूखी भूमि हो गई उर्वर,
उपज हुई, हरियाली छाई, तुम्हें हुआ यह ज्ञात ।

किंतु जब अश्रुबिंदु निष्पात

मेरा हुआ, न मैंने जाना,
कहाँ गिरा आँसू का दाना,
क्या उपजा, किसने काटा—सब रहा मुझे अज्ञात ।

विश्व कथा रोदन की दीन,
इसने मुझे न दुखित बनाया,
शोक हृदय यह देख समाया,
विश्व कथा है उस रोदन की जो है अर्थ विहीन।

वसंत

कहाँ मेरे उद्यान वसंत!
नियति मारुत का चला कुदंड,
गिरे तरु - पल्लव हो-हो खंड,
हरे - भरे लहलहे बाग़ का, हाय, हो गया अंत!

विश्व में आए बहुत वसंत,
हुए पत्रित, पुष्पित उद्यान
बहुत से, हुआ कोकिला गान,
मैं अपना उद्यान देखकर कहती थी, हा हंत!

हो गई थी मैं निरी निराश,
मिला पर 'मोहन' माली एक,
सींचने की की उसने टेक
यह उजड़ी वाटिका, हरी की मेरी सूखी आश।

वृद्ध माली था चतुर सुजान,
सजग कर दिया मृतक उद्यान,
भर दिया प्रति पल्लव में प्राण,
पड़ी सुनाई क्रांति - कोकिला की भी धीमी तान।

अभी तो था केवल आरंभ,
शत्रु पर सका न इसको देख—
भाग्य की मेरे बदले रेख;
लगा मार्ग में रोड़े रखने दिखा शक्ति का दंभ।

ले गया माली मेरा छीन,
दिया सिकचों में उसको छोड़,
दिए सब उठते पौधे तोड़,
डाले मींज उभरते अंकुर, मसलीं कलियाँ दीन!

खो गया मेरा स्वप्न वसंत!
क्या अब माली फिर आएगा?
फिर सूखों को पनपाएगा?
या इस बार शत्रु कर देगा इस उजाड़ का अंत?

विडंबना

सिखाता था मुझको संसार—
स्वर्ण - खंड अपने को जानो,
तपने से भय कभी न मानो,
चमक पड़ोगे क्षण भर तपकर, सह लो चार प्रहार !

भुलावा खूब दिया संसार
तुमने मेरे भोलेपन को,
जला दिया मेरे जीवन को,
पर न चमक आई कुछ मुझमें ओ वंचक, बदकार !

स्वार्थमय था न कभी, संसार,
मैं, प्रकाश ले मैं क्या करता,
उसे पुनः तुझमें ही भरता,
उसका तेरे ही काले मुख पर करता विस्तार।

रचा था क्यों मुझको संसार ?
इसी लिए ? तू मुझे जलाए,
रोम - रोम में आग लगाए,
ऊपर उठकर धूम्र बनूँ मैं, नीचे गिरकर क्षार !

जलाना ही तो था संसार—

काष्ठ-खंड-जड़ मुझे बनाता,

मिट्टी का यह घर जल जाता,

भाव, आश, अभिलाष-पुंज रच क्यों रक्खा अंगार ?

बंधु कवि

सुना कवि प्रथम तुम्हारा गान,

नव विहंग के स्वर कुमार-सा,

शिशु निर्झर की चपल धार-सा,

स्वाभाविक, स्वर्गीय, अकृत्रिम, मृदु, स्वतंत्र, अम्लान।

बंधु कवि स्वागत तुम्हें स प्यार,

जिसे अकेले दुर्गम पथ पर

मिला पथिक हो सहृदय आकर,

कोई आज वही समझेगा मेरा हर्ष अपार।

भूमि पर चलता है संसार,

नभ में मैंने मार्ग बनाया,

साथी कहीं न अब तक पाया,

एक ओर अब पड़ा सुनाई तेरा स्वर सुकुमार।

चलें हम आओ साथ, सुजान,
कठिन मार्ग यह सरल बनाएँ,
आगे-आगे बढ़ते जाएँ,
उड़ते, सुनते और सुनाते तेरे अपने गान।

क्रांति-शांति

तुम कहते हो मंद अनिल
भारत के बन में आने दो,
मैं, तुम मुझको पहले आँधी
और बवंडर लाने दो।

तुम कहते हो हमें देश में
सद् सुगंध फैलाने दो,
मैं कहता हूँ पहले मुझको
गर्द-गुबार उड़ाने दो।

तुम कहते हो नव पल्लव से
डालें हमें सजाने दो,
मैं, पीले पत्तों की मुझको
पहले जड़ें हिलाने दो।

तुम कहते हो हमें देश में
हरा - भरापन लाने दो,
मैं कहता हूँ पहले मुझको
शुष्क - शून्यता छाने दो।

तुम कहते हो हम विहगों को
सुमधुर स्वर में गाने दो,
मैं, पहले मुझको कोलाहल
चीत्कार उठवाने दो।

तुम कहते हो ऋतु वसंत की
शांति देश में आने दो,
मैं कहता हूँ पहले मुझको
पतझड़ - क्रांति मचाने दो।

हमारी शान

देख तारों का उच्च समाज
की न प्रशंसा कभी सोचकर,
कभी पड़े थे ये पृथ्वी पर,
निज प्रयत्न तप से ऊपर उठ चमक रहे हैं आज।

नियति ने पकड़-पकड़कर हाथ
उच्चासन पर इन्हें बिठाया,
अंधी दुनिया ने यश गाया
इनका व्यर्थ, मिलाऊँगा क्या सुर मैं उसके साथ ?

करूँगा उस रजकण का गान
जिसका बल इस तन में आया,
जिसने मुझको यह सिखलाया,
मान सहित पृथ्वी है अच्छी नभ से तजकर मान।

मुझे है रज बनकर संतोष,
यदि मेरे प्रयत्न का यह फल,
रत्न बनूँ मैं औरों के बल,
यह विचार इस मानी मन में भर देता है रोष।

हहा ! संसार, रहा क्या बोल ?
तू मुझपर उपकार करेगा !
(या तू बातें बना ठगेगा)
देख दंड-भुज मुझे चाहिए बस मिहनत का मोल !

न देगा वह भी तू संसार,
आऊँगा माँगने न मैं पर,
कर्म करूँगा तत्पर रहकर,
जो ठुकरा दे मज़दूरी को चाहेगा उपकार ?

जानता नहीं हमारी शान ?—
मस्तक उठा तान वक्षस्थल,
यह कहने का रखता हूँ बल,
नहीं विधाता का भी हम पर लेश मात्र एहसान।

पल्लव से

कली कोमल मंजुल सुकुमार
छिपाकर अपने मृदुल सु अंक,
बचा जगती की दृष्टि सशंक,
पल्लव, जब मैं तुझे देखता करते उसको प्यार—

हृदय में उठता एक विचार
कली-सी मैं भी अपना प्राण,
छिपा वक्षस्थल पर्ण समान,
एक समय था जब करता था तेरे ही-सा प्यार।

आह, वह अवसर स्वप्न समान
हो गया अब मुझको, हे पात,
कहीं तुझको भी भूली बात-
सा न जाय हो एक दिवस तेरा यह सुख अनजान!

अरे यह निराधार संदेह;
सूख जाएगी कलिका एक,
खिलेंगी वैसी कली अनेक,
पल्लव गण को नित्य मिलेगा नया हर्ष, नव स्नेह।

अभागे मानव ही हृत्पात,
जिनमें एक कली ही खिलती,
मुर्झाती दूसरी न मिलती,
क्षण भर का सुख स्वप्न हृदय का होता लय अज्ञात।

करो पल्लव कलियों को प्यार,
वेदना मानव का अधिकार,
तुम्हारा नित्य सुखी संसार
मैं न बनाऊँगा दुखमय कर शंका-भय संचार।

———

भेंट के फूलों से

है बनकर भेंट हमारी
ऐ सुमनों तुमको जाना,
मुझ भूल गए से प्रेमी
का है संदेश सुनाना।

उनके करतल पल्लव में
क्षण भर जाकर खिल आना,
गुदगुदा हथेली उनकी
कुछ मेरी याद दिलाना।

उनके दर्पण-नयनों में
पल भर प्रतिबिंबित होना,
पर स्मृति-दर्पण पर अपना
नित रखना रूप सलोना।

जब चाहें तुम्हें उठाकर
नासिका निकट ले जाना,
तब चूम राह में अधरों
को पीत पराग लगाना।

जब जान पास से मेरे
है हुआ तुम्हारा आना,
कुछ पूछें दशा हमारी
तब सुमनो यों बतलाना।

उनके हाथों से गिरकर
धरती पर तुम आ जाना,
निज ओस कणों में मेरे
कुछ मूक अश्रु दिखलाना।

फिर रूप, रंग, रस खोकर
जल्दी - जल्दी मुर्झाना,
जिस रजकण से थे निकले
उस रजकण में मिल जाना।

जिन फूलों की है क़िस्मत
क्षण भर खिलकर मुर्झाना,
क्यों जग ने सीखा उनको
है मसल - कुचल ठुकराना।

जिन कलियों की है क़िस्मत
पल में खिलकर कुम्हलाना,
क्यों दुनिया ने है सीखा
उनपर इतना इतराना।

वेदने

वेदने, आ मुझको कर प्यार।
बिठा कर मुझको अपनी गोद
तप्त श्वासों का विजन समोद,
तीक्ष्ण चुंबनों की कर मेरे अधरों पर बौछार।

वेदने, आ मुझको कर प्यार।
मुलायम मिट्टी की यह देह,
फेर उसपर कर - कुलिश स नेह,
पहना मुझको चिन्गारी से रक्त अश्रुकण हार।

वेदने, आ मुझको कर प्यार।
सुखों का जड़-शीतल आधार,
अभावुक, शुष्क और निःसार,
ढूँढा करता सदा हमारा यह जर्जर संसार!

किंतु मैं यौवन हूँ साकार,
अचेतन सुख से मेरा काम ?
चाहिए मुझे नहीं विश्राम,
पर तड़पन, उलझन, बेचैनी, ऐंठन, हाहाकार।

देख जीवन सरिता की धार
वेगमय जिसका प्रबल प्रवाह
ढूँढता नहीं नाव, मल्लाह,
कूद धार से लड़-भिड़ मर-खप कर जाता हूँ पार।

हमारा यह जर्जर संसार
ढूँढता चिकनी-चुपड़ी राह,
मुझे तीखे काँटों की चाह,
अड़चन, उलझन, बाधा, संकट की मुझको दरकार।

मुझे यह देगा तेरा प्यार,
प्यार तेरा जो कठिन कठोर,
प्यार तेरा जो दाहक घोर,
समझूँगा तब सफल हुआ मेरा जीवन व्यापार।

वेदेन, बढ़ा-बढ़ाकर हाथ
मुझे दे दुःखों का उपहार,
न तज दूँ जब तक मैं संसार,
यह वेदना-विनोदी यौवन तजे न मेरा साथ।

सौंदर्य सुख

हाय, क्यों कवि न हुआ संसार!
हूँ छोटा-सा तरुवर सुंदर,
नूतन भावों के पल्लव वर
हृदय-डाल से निकल-निकलकर फैले विविध प्रकार।

कल्पना - चंचल चली बयार,
कविता की ध्वनि निकली मरमर,
विहग - छंद - संगीत साथ कर
उठी मधुर अपने स्वर से कूजित करने संसार।

हाय, यह हृदयहीन संसार!
पल्लव इसे न लगते सुंदर,
मीठे इसे न लगते मृदु स्वर,
कहाँ लगे फल ? पूछ रहा है मुझसे बारंबार।

हृदय संकोचक तुच्छ विचार—
उपयोगी ही रह पाएगा,
कब जग के मन से जाएगा,
सौंदर्य में सुख अनुभव कब सीखेगा संसार ?

जौहरी

मणियाँ बेच रहा हूँ आओ !
मणियाँ हैं सुंदर, अति सुंदर,
मणियों की है ज्योति अनश्वर,
शोभा की अनदिखी राशि वर देख तनिक यह जाओ।

मणियाँ बेच रहा हूँ आओ !
दीप्त कौन था इनसे सागर,
किस माँझी के कला-कुशल कर
ढूँढ इन्हें लाए हैं बाहर, यह मुझसे सुन जाओ।

मणियाँ बेच रहा हूँ आओ।
सागर मानव का अंतस्तल,
भरा भावना का जिसमें जल,
उसमें था कविता - मुक्ता - दल, यह परखो, परखाओ।

मणियाँ बेच रहा हूँ आओ।

कविवर माँझी इसके अंदर
उतर कल्पना की डोरी पर
लाया है इनको चुन - चुनकर; इनका मूल्य लगाओ।

मणियाँ बेच रहा हूँ आओ!

मणियाँ कैसी सुंदर, सुंदर,
चमक, दमक, आभा की आकर!
सुषमा की इस अतुल राशि वर से निज हृदय सजाओ।

मणियाँ बेच रहा हूँ आओ!

इन्हें मोल लेना है निर्भर
केवल मन की भावुकता पर,
कभी नहीं व्यय लाख दाम कर; प्यार करो ले जाओ।

भ्रम

अरी भोली दुनिया असहाय,

तुझे दे अल्प शक्ति, विकराल
विश्व - बंधन में किसने डाल
तुझे बनाया चिर अशक्य, असमर्थ और निरुपाय?

भले का जब होता अपवाद,
बुरा जब होता यश का पात्र,
भला उसको कहते जन मात्र,
सुखी कुटिल रहता, जो सीधा तपता अग्नि - विषाद।

एक मरता दिन भर आघात,
नहीं मिलता मिहनत का दाम,
एक, पर, बैठा जो बेकाम,
लक्ष्मी उसके पैर दबाती रहती जब दिन - रात,

पुण्य पर जब विजयी हो पाप
मचाता अपनी जय - जयकार,
पुण्य पर करके कठिन प्रहार,
उसे बिठा देता उठ पाए कभी न अपने आप,

न्याय का छोड़ा जाता पक्ष,
लगाया जाता उस पर दोष,
दिखाया जाता उसपर रोष,
बंदी बना बुलाया जाता जब अन्याय समक्ष,

उच्च जब समझा जाता हीन,
नीच का जब होता संमान,
(धन्य रे जग यह तेरा ज्ञान !)
मणियाँ जब ठुकरा दी जातीं रज कर शीशासीन,

चीख़ पड़ती है तू अनजान—
"विश्व का है कोई भगवान !'
श्रवण कर प्रतिध्वनि लेती मान
'—है कोई भगवान !' बावली धोखा खाते कान !

विश्व का हो भी यदि कर्तार,
किसी बंधन का वह भी दास,
फँस गया वह भी तुझको फाँस,
उसके आगे झुकना कैसा जो तुझ-सा लाचार !

मुक्ति जीवनादर्श—है भूल,
हर जगह बंदी - बंधन द्वंद,
स्वप्न सब का होना स्वच्छंद,
द्वंद - रक्त से ही अभिसिंचित है यह जीवन-मूल।

विश्व से उठ तू कर संग्राम,
किसी के झुका न शीश समक्ष,
गर्व-उन्नत रख मस्तक वक्ष,
नहीं मैं हार जीत के पक्ष,
देखूँ तू निज प्रतिरोधी को रखती कब तक थाम।

रज-तम

मेरे इस लघु जीवन में
उल्लास अचानक आया,
कुछ स्वप्न अनूठे देखे,
लेने को हाथ बढ़ाया।

आशा के दीप जलाकर
सुख की राहों पर भटका,
चुनने को नभ के तारे
स्वप्निल तारों पर अटका।

उज्ज्वल भविष्य के बल पर
तम वर्तमान का झेला,
इस तम के हटने की है
आती न कभी पर बेला।

प्रतिदिन इस जीवन तम का
है 'आज' 'आज' बन आता,
उज्ज्वल 'कल' जिसको समझा
वह कल पर टलता जाता।

हे जीवन की मृगतृष्णा!
मुझको अब मत दौड़ाओ,
कहकर मैं केवल छाया
मुझको पीछे लौटाओ।

मैं तम से जाकर भेटूँ,
उससे अपना दिल खोलूँ,
दुनिया की आँख बचाकर
उससे दो बातें बोलूँ।

तारों की तजकर आशा
सिकता के कण से खेलूँ,
जिसकी गोदी में खेला
उसको गोदी में ले लूँ।

तम को मैं कम क्यों समझूँ
जीवन आशा है क्षण की,
इस काल महा घन ऊपर
विद्युत रेखा जीवन की।

जग उज्ज्वल जीवन क्षण भर
फिर चारों ओर अँधेरा,
इस क्षण-भंगुर आभा पर
क्यों मोहित हो मन मेरा।

रजकण को कम क्यों समझूँ
यह सारी दुनिया न्यारी
इनको ही जोड़ बनी है,
इनसे जाती सिंगारी।

अणुओं का क्षणिक मिलन ही
जग - जीवन है कहलाता,
उनका बिछुड़न होते ही
जग - जीवन लय हो जाता।

हे जग - जीवन की नौका,
उतरा, इतरा तू पल भर,
फिर कूल अनंत कणों के
फिर तम अनंत के सागर।

ध्रुव सत्य काल के केवल
ये रज कण हैं—यह तम है,
ये आज मिले हैं मुझको
आनंद मुझे क्या कम है।

कल्पना-विश्व

कल्पना का हो सूर्य उदय,
हटा मणिजटित श्यामल चादर
तन से जगत जगे,
जागृति - ज्योति तमोमय - निद्रित
नयनों में उमगे।

ओस कण पावन निधि अक्षय
खुले, स्नान कर जिसमें जग का
आलस मलिन हटे,
नवोल्लास नूतनस्फूर्ति जग
रोम—रोम प्रकटे।

नई डालों पर खग नव-वय
बैठ नवल स्वर नव रागों में
गाएँ गीत नए,
भाव जगाएँ हृदय, जगाए
अब तक जो न गए।

विश्व को हो सुखमय विस्मय,
अगणित मुख मुकुलित कुसुमों से
विस्मय प्रकट करे,
सौख्य - सुगंध प्रसारित करके
भूतल-गगन भरे।

चले भावों का पवन मलय,
भावुकता उद्वेलित उर कवि-
सर का हुलस हिले,
स लालिमा - लालित्य स दल - पद
कविता-कमल खिले।

कमल हो यह मादक रसमय,
रसिक भृंग इसपर मँडराए,
झूम झूम झूले,
विश्व कल्पना का यह लखकर
सत्य विश्व भूले।

आत्म समर्पण

विसुध अपने जीवन की डोर
सौंपी तेरे कर में चाहे
जिधर उसे दे मोड़,
काल अंत तक वश में रख या
दे पल भर में छोड़ ।

अतल सागर में मुझको बोर
अनियंत्रित अगणित लहरों में
अट्टहास कर क्रूर,
व्यंगध्वनि से पूछ रही है,
तल - तट कितनी दूर ?

यही अन्याय नियति का घोर
परिमित शक्ति, अपरिमित साहस
का मानव में मेल
करके, बना जगत प्रतिद्वंदी
रण है रचा, न खेल ।

लगाएँ दोनों अपना ज़ोर,
मानव अपने सीमित बल से
सके न जग को मार,
पर असीम साहस के कारण
बैठ न माने हार।

मचा हो यह शाश्वत रण रोर!
नहीं किंतु मुझमें वह धीरज
देखूँ शाश्वत द्वंद,
पल में हार मान ले बंदी
या द्रुत काटे फंद।

इसी से अपनी जीवन डोर
पूर्ण समर्पित करदी तुझको
पहुँचा इच्छित छोर,
मुझे न भाती खींचा-खींची
अपनी-अपनी ओर।

पूर्ण तज मुझे न भाता खंड,
या मैं बनूँ विश्व का स्वामी
या मैं कण का दास,
या सादर निवास नंदन बन
या मरु में निर्वास।

मुझे दे या लंबे भुज - दंड
इतने, इच्छा ही करते नभ
के तारे लूँ तोड़
या जब हाथ दिए हैं छोटे
आँखें भी दे फोड़।

मुझे दे या वह शक्ति प्रचंड,
यह अनंत सागर लघु बुदबुद-
सा आ मेरे पास
कँपे, फूँक दूँ, टूटे तजकर
निस्सहाय निःश्वास।

अल्प या मुझे बना तृण खंड,
जिसे उड़ा अति मंद वायु भी
सके कहीं भी फेंक,
बहा जिसे ले जाय कहीं भी
जल का लघु कण एक।

हमारे मन का तब व्यवहार,
जो कुछ मैं चाहूँ वह सब हो
पा मेरा संकेत,
कुछ तेरे कुछ मेरे मन का
साझे का - सा खेत—

इसी को जोत रहा संसार
किंतु न मेरा जग का जीवन
मेरा भिन्न प्रवाह,
छोर छोड़कर मुझे न भाई
कभी बीच की राह ।

इसीसे भावुकता - मधु पान
करके मैंने विस्मृत कर दी
अपनेपन की शान,
सौंपा तेरे शासक हाथों
में जीवन - तन - प्राण ।

न उत्तरदाई मुझको मान
मेरे किसी कर्म का, मैंने
भुला दिया सब ज्ञान,
जिधर घुमा दे घूम जायगा
यह अबोध जलयान ।

किधर है पाप, पुण्य किस ओर ?—
धर्म-अधर्म, उचित-अनुचित हैं
कहाँ ?—प्रयोजन कौन ?
नियति उँगलियों पर है तेरी
मुझे नाचना मौन ।

समर्पित कर जीवन की डोर
नियति समझ मत विश्व द्वंद से
ऊब गया हूँ भाग,
इसे निरर्थक जान किया है
मैंने इसका त्याग।

प्रवंचना

करुणा का फैला अंचल
आशा की बनकर प्रतिमा,
मेरे सूखे जीवन में
भरने तुम चलीं अरुणिमा।
माली मुझको भूला, मैं
था सूख रहा कोने में,
तुम प्यार सलिल ले आईं
निज अधरों के दोने में।
कब पास इसे ले आईं
कब एक बूँद भी पाया,
बस देख दूर से इसको
मुझमें नव जीवन आया।

आशा के सुदृढ़ तने में
अभिलाषा - डालें आईं,
अरमानों के पल्लव, सुख-
स्वप्नों की कलियाँ लाईं।

कविता - विहगों के स्वर में
जब मैंने तुम्हें बुलाया,
तुम अंतर्धान गईं हो—
यह मैं कुछ समझ न पाया।

मेरी शीतल छाया में
क्षण भर को ही तुम आतीं,
मेरी डालों - सी बाहों
पर पल भर तुम झुक जातीं।

बस एक सुमन ही मेरा
निज चरणों में रख लेतीं,
बस एक बार ही मेरे
सिर हाथ फेर तुम देतीं।

हो बाग़ - बाग़ मैं जाता,
सुख लाख - लाख मैं पाता,
तुम बूँद मुझे दे देतीं
मुझको सागर हो जाता।

सब हरा - भरापन अपने
जीवन का सफल समझता,
सब फूल - कली मय होना,
मेरा कुछ मतलब रखता।

कितने कुसुमों की आशा
नृप के हाथों में जाना,
कितनों की, देवों के सिर
पर चढ़ - चढ़कर इतराना।

कितनों की, तरुणी के उर
गलहारों में गुँथ जाना,
कितनों की, केश - प्रणयिनी
के कुंचित - कलित सजाना।

मेरी विनम्र, लघु आशा
थी स्नेह - चरण की दासी,
स्वीकृत न हुई पर वह भी
थी एक बूँद की प्यासी।

सूखो जीवन के तरुवर,
सूखो आशा की डाली,
सूखो अभिलाषा - पल्लव,
कलियाँ सुख - स्वप्नों वाली।

रजकण - से अरमानों का
जो मान नहीं जग करता,
उसमें जीवन की इच्छा
जड़ता है या मादकता।

सूखो जीवन के सुमनो,
सूखो इच्छा की कलियाँ,
सूखो आशा के अंकुर,
सूखो संगिनि वल्लरियाँ।

तृण-सी भी लघु आशा है
जिस जगह अनिश्चित रहती,
क्यों पागल दुनिया उस जग
में जीवन संकट सहती।

सूखो जड़ जीवन की जड़,
सूखो उत्साह अनोखे,
सूखो उमंग की कोंपल,
जग देता तुमको धोखे।

क्रूरते, सूखता था मैं
मुझको क्यों व्यर्थ जिलाया,
विकसित कर मुर्झाने में
तुमने क्या मज़ा उठाया।

उपवन

माली, उपवन का खोल द्वार!
बहु तरुवर ध्वज - से फहराता,
बहु पत्र - पताके लहराता,
पुष्पों के तोरण छहराता,
यह उपवन दिखला एक बार!

माली, उपवन का खोल द्वार!
कोकिल के कूजन से कूजित,
भ्रमरों के गुंजन से गुंजित,
मधुऋतु के साजों से सज्जित,
यह उपवन दिखला एक बार।
माली, उपवन का खोल द्वार।
अपने सौरभ में मदमाता,
अपनी सुखमा पर इतराता,
नित नव नंदन वन का भ्राता,
यह उपवन दिखला एक बार।
"मत कह--उपवन का खोल द्वार।
यह नृप का उपवन कहलाता,
नृप दंपति ही इसमें आता,
कोई न और आने पाता,
यह आज्ञा उसकी दुर्निवार।
मत कह--उपवन का खोल द्वार।
यदि लुक-छिपकर कोई आता,
रखवालों से पकड़ा जाता,
नृप संमुख दंड कड़ा पाता,
अंदर आने का तज विचार"

माली, उपवन का खोल द्वार
उपवन मेरा मन ललचाता,
आकर न यहाँ लौटा जाता,
मैं नहीं दंड से भय खाता,
मैं सुषमा पर बलि बार - बार।

माली, उपवन का खोल द्वार।
यह देख विहंगम है जाता,
कब आज्ञा लेने यह आता,
फिर मैं ही क्यों रोका जाता,
मैं एक विहग मानवाकार।

माली, उपवन का खोल द्वार!
कल्पना - चपल - परधारी हूँ,
भावना - विश्व - नभचारी हूँ,
इस भू पर एक अनारी हूँ,
फिरता मानव - जीवन बिसार।

माली, उपवन का खोल द्वार।
उपवन से क्या ले जाऊँगा,
तृण-पात न एक उठाऊँगा,
कैसे कुछ ले उड़ पाऊँगा,
निज तन-मन ही हो रहा भार।

माली, उपवन का खोल द्वार !

भय, मीठे फल खा जाऊँगा ?
कुछ काट - कुतर बिखराऊँगा ?
मैं कैसा विहग बताऊँगा,
मैं खाता निज उर के अँगार।

माली, उपवन का खोल द्वार।

भय, नीड़ बना बस जाऊँगा ?
अपनी संतान बढ़ाऊँगा ?
सुन अपना नियम सुनाऊँगा—
एकाकी बन - उपवन विहार।

माली, उपवन का खोल द्वार।

विहगों से द्वेष बढ़ाऊँगा ?
भ्रमरों को मार भगाऊँगा ?
अपने को श्रेष्ठ बताऊँगा ?
मैं उनके प्रति स्वर पर निसार।

माली, उपवन का खोल द्वार।

गुरु उनको आज बनाऊँगा,
श्रम युत शिष्यत्व निभाऊँगा,
शिक्षा कुछ उनसे पाऊँगा,
सिखलाएँगे वे चिर उदार।

माली, उपवन का खोल द्वार।

लतिका पर प्राण झुलाऊँगा,

पल्लव दल में छिप जाऊँगा,

कुछ ऐसे गीत सुनाऊँगा,

जो चिर सुंदर, चिर निर्विकार।

माली, उपवन का खोल द्वार।

परिमल को हृदय लगाऊँगा,

कलि-कुसुमों पर मँडराऊँगा,

पर फड़काकर उड़ जाऊँगा,

फिर चहक-चहक दो-चार बार।

ग्रीष्म बयार

बह उठो ग्रीष्म की हे बयार!

दिन में जब जलती थी धरती,

तब हर-हर वृक्षों पर करती,

तृण, रेणु, राख से तन भरती,

तुम दौड़ रही थीं द्वार-द्वार।

बह उठो ग्रीष्म की हे बयार!

अब तो शीतल संध्या आई,
तारावलि अंबर पर छाई,
शशि से मिलने ज्योत्स्ना धाई,
तुम लुप्त हो गईं क्या विचार।
बह उठो ग्रीष्म की हे बयार!

ली अखिल प्रकृति ने खींच साँस,
लहरों ने खोया गीत-लास,
तरुगण अवाक्, बेलें उदास,
सब रहे तुम्हारा पथ निहार।
बह उठो ग्रीष्म की हे बयार!

तेरे वियोग में विह्वल मन,
तन छिद्र सभी आँखें बन-बन,
हैं ढाल रहे आँसू के कण,
आओ पोंछो यह अश्रु धार।

बह उठो ग्रीष्म की हे बयार!
पल्लव से पल्लव मिल जाए,
डाली से डाली हिल जाए,
कवि की उर-कलिका खिल जाए,
हरहरा उठो तुम एक बार।

बह उठो ग्रीष्म की हे बयार !

वृक्षों से वृक्षों पर ढुलको,
पत्तों में हिल-हिलकर पुलको,
लहरों से मिल-मिलकर कुलको,

तैरो सरिता के आर - पार ।

बह उठो ग्रीष्म की हे बयार !

तुमसे सजीव जीवन पाते,
निर्जीव तुम्हीं पर इतराते,
तुम रहीं न, वे मर-से जाते,

कर दो सब में जीवन प्रसार ।

बह उठो ग्रीष्म की हे बयार !

लो बार - बार बलि जाऊँ मैं,
लो तुमको गीत सुनाऊँ मैं,
अब कितना और मनाऊँ मैं,

सुन लो कवि की आकुल पुकार ।

बह उठो ग्रीष्म की हे बयार !

मुझको बतला दो निज निवास,
मैं आजाऊँगा निष्प्रयास,
कवि को समान सब दूर - पास,

मैं लाऊँगा तुमको उतार ।

बह उठो ग्रीष्म की हे बयार !

क्या शैलराज की चोटी पर,
जो निर्मित है चाँदी का घर,
उज्ज्वल, शीतल, स्वप्निल, सुंदर,
उसमें तुम करती हो बिहार ?

क्या वहाँ ग्रीष्म की हे बयार,
शशि किरणों की मृदु शैया पर,
प्रियतम समीर के फैले कर
पर अपना लज्जानत सिर धर,
सोईं जग की सुध-बुध बिसार ?

या अंतरिक्ष में, हे बयार,
संध्या के बहुरंगी अंबर
से बना हुआ है सुंदर घर,
तुम रहीं विचर जिसके अंदर
इस दीन विश्व का छोड़ प्यार ?

इस जादूघर को हे बयार,
जाती होगी चंद्रिका लीप,
तारों के होंगे प्रभ प्रदीप,
होगा समीर प्रियतम समीप,
फिर लगे न क्यों यह जग असार।

बह उठी ग्रीष्म की लो बयार।
आ गईं कहाँ से तुम अजान,
तरु से 'मर्मर्' की छिड़ी तान,
गिरि - अंतरिक्ष में रहा छान,
तुम निकलीं पल्लव दल बिदार।

चंचला ग्रीष्म की तुम बयार।
घुसतीं तुम प्राणों के भीतर,
चलतीं रोमों पर सिहर-सिहर,
उड़तीं वस्त्रों में फर-फर-फर,
पाया न पकड़ पर एक बार।

अनदिखी ग्रीष्म की तुम बयार।
हर ओर सुनातीं अपना स्वर,
मैं ढूँढ़ूँ तुमको किधर-किधर,
पाया न देख, बैठा थककर,
तुम गईं जीत, मैं गया हार।

बह उठीं ग्रीष्म की तुम बयार।
लो उस लतिका से रहीं खेल,
लो उस डाली को रहीं ठेल,
यह तरु झकोर, वह तरु ढकेल
चलतीं, गति सकता कौन वार।

बह उठीं ग्रीष्म की तुम बयार।
साकार वृक्ष से निराकार
तुम निकल हुई कैसे बयार?
सब ओर तुम्हारा अब प्रसार,
इस नभ मंडल के आर-पार।

बतला दो मुझको हे बयार,
जब तन-तरुवर के दल विदार,
उड़ जाऊँगा मैं पंख मार,
छूँगा ससीम की अवधि पार-
कर चिर अनंत, चिर निराकार?

गीत-विहंग

गीत मेरे खग बाल!
हृदय के प्रांगण में सुविशाल
भावना-तरु की फैली डाल,
उसी पर प्रणय-नीड़ में पाल
रहा मैं सुविहग बाल!

पूर्ण खग से संसार,
स्वरों में जिनके स्वर्गिक गान,
परों में उडुगण - उच्च उड़ान,
देख सुन इनको ये अनजान
कँप रहे विहग कुमार।

कल्पना - चलित बयार
खोलकर प्रणय - नीड़ का द्वार,
इन्हें बाहर लाई पुचकार,
उड़े उगते लघु पंख पसार,
गिरे पर तन के भार।

धरा कितनी विकराल!
झुलाती मंद - मृदुल वह डाल,
कठोरा यह काँटों की जाल,
यहाँ पर आँखें लाल निकाल
तक रहे वृद्ध बिडाल!

प्रथम रोदन का गान
बनाता स्त्री का सफल सुहाग,
पुरुष का जाग्रत करता भाग,
मिटा पर इनका रोदन - राग
शून्य में हो लय मान।

भला मानव संसार,
तोतले जो सुन शिशु के बोल,
विहँसकर गाँठ हृदय की खोल,
विश्व की सब निधियाँ अन्मोल
लुटाने को तैयार !

हुआ मुखरित अनजान
हृदय का कोई अस्फुट गान,
यहाँ तो, दूर रहा संमान,
अनसुनी करते विहग सुजान,
चिढ़ाते मुँह विद्वान ।

आज मेरे खग बाल
बोलते अधर सँभाल - सँभाल,
किंतु कल होकर कल वाचाल,
भरेंगे कलरव से तत्काल
गगन, भूतल, पाताल ।

फुदकने की अभिलाष
आज इनके जीवन की सार,
'आज' यदि ये कर पाए पार,
चपल कल ये अपने पर मार
मथेंगे महदाकाश ।

भूल करता कवि बाल,
आज ही में जीवन का सार,
मूर्ख लेते कल का आधार,
जगत के कितने सजग विचार
खा गया कल का काल।

सामने गगन अछोर,
उड़ाता इनको निःसंकोच,
हँस रहा है मुझपर जग पोच,
गिरे ये पृथ्वी पर क्या सोच?
उड़े तो नभ की ओर!

गान-बाल

गान मेरे लघु बाल!
चटुल यौवन के प्रथमोन्माद,
प्रणय के कोमल प्रथम प्रसाद,
हृदय के प्रथम प्रहर्ष - विषाद,
गोद के मेरे लाल।

लाज अंचल में लाल

छिपे ये मेरे उर के गान,
भावना - पय का करते पान,
कल्पना के कर में छविमान,
कर रहे मुझे निहाल।

हृदय में नहीं विचार—
जगत जाने, ये मेरे बाल,
चलूँ मैं उन्हें उछाल, उछाल,
दीखता मुझको तो हर लाल
एक अनुपम संसार।

विश्व कितना विकराल,
चलाकर अपनी दृष्टि अराल
बिछाता है टोनों का जाल,
वहाँ जाने को मेरे लाल,
न मचलो बाल मराल!

डोल डैने फटकार,
अरे, जाने ही को तैयार,
व्याध -जग लेना अपयश भार
न, मेरे गान - विहंग कुमार
अमरता के अवतार।

उड़े यदि गान-कुमार,
भरेंगे कलरव से सोल्लास
काव्य के उपवन का आकाश,
जहाँ रवि, शशि, उडु करते वास
मूकता का व्रत धार।

गिरे यदि गान-कुमार,
बनेगें इस उपवन की खाद,
दलों में छाँह, फलों में स्वाद,
फूल में बनकर गंधोन्माद
करेंगे नित्य विहार।

पतन - उत्थान असार,
तरंगों - सा जिनका विस्तार,
एक परिवर्तन का खिलवार,
किंतु है तल में पारावार
सदा जो एकाकार।

चूमकर अंतिम बार
तुम्हें देता हूँ आशीर्वाद,
तुम्हारी यात्रा हो साह्लाद,
कभी मत करना मेरी याद,
विदा मेरे सुकुमार।

कवि

"तुम्हारी वीणा हे स्वरकार!
बनी हुई किस दारु मृदुल की,
किन तारों से तन स्वर पुलकी,
कौन उँगलियों से झंकृत हो गुँजा रही संसार!

तुम्हारी वीणा हे स्वरकार!
किस आनंद, हर्ष, किस सुख के,
किस विषाद, पीड़ा, किस दुख के
गाती गीत, अरे इस गायन-वादन में क्या सार ?"

हमारी वीणा यह सुकुमार
हृदय-दारु से बन स्पंदित है,
भाव-तार से तन कंपित है,
चला कल्पना चपल उँगलियाँ कवि करता झनकार।

हमारी यह वीणा सुकुमार
सदा मधुर सुर में ही गाती,
जग कटुता को मधुर बनाती,
मृदुल गान बन इसपर ढलता जग का हाहाकार।

बँटा क्या सुख-दुख में संसार?
इस जग के अगणित भावों को,
गाती वीणा, तुष्ट न पर हो,
उन लोकों के गीत सुनाती जो स्वप्नों के पार!

अरे मानव स्वप्नों के पार,
कितनी अभिलाषाएँ मन की,
कितनी आशाएँ जीवन की,
जिन्हें लुप्त हम समझ चुके हैं हो उठतीं साकार।

बड़ा यह आकर्षक संसार,
पूर्व सुपरिचित आशाओं से,
चिर बिछुड़ी अभिलाषाओं से
पुनर्मिलन के संमुख यह जग लगता है निस्सार।

अरे मानव स्वप्नों के पार,
कितनी आकांक्षाएँ मन की,
कितनी इच्छाएँ जीवन की,
जिन्हें मान अप्राप्य चुके हम हो उठतीं साकार।

बड़ा मनमोहक यह संसार,

पूर्व सुसंचित इच्छाओं के,
चिर विस्मृत आकांक्षाओं के
स्वर्ण मिलन के संमुख यह जग लगता केवल क्षार।

स्वर्ण का पाकर यह संसार,

थिर करने का ध्येय बनाता,
कवि, पर, व्यर्थ परिश्रम जाता,
यह चल चित्र चपल पट का ही ले सकता आधार।

यही आदर्श स्वप्न संसार:

भावुकता निद्रित जग पट पर,
अपने - राग रंग से रँगकर,
शब्द - तूलिका से रखता कवि चित्रकार-स्वरकार।

खोलता जब आँखें संसार

यह नैसर्गिक पट हट जाता,
यह अपूर्ण जग आगे आता,
कहाँ स्वर्ग वह! कहाँ नरक यह! विस्मित विश्व अपार।

निराशा का होता विस्तार,
अंधकार जीवन में छाता,
तब कवि दीपक राग सुनाता,
जिस प्रकाश में जग नव पथ का करता आविष्कार।

परिश्रम चित्रकार—स्वरकार,
नहीं गया है तेरा निष्फल,
अपने नए-नए पथ पर चल,
उसी स्वर्ण की स्वप्न पुरी को खोज रहा संसार।

कहाँ मिलने को उसका द्वार!
आदर्शों को लक्ष्य बनाता
जो न, सत्य ही कब वह पाता ?
नहीं मिलन में किंतु खोज में है जीवन का सार।

कवि के आँसू

इस आँसू के साथ मुझे दो
रहने आज अकेला,
शोक प्रदर्शन की न घड़ी यह
मेरे सुख की बेला।

किसने अपनी मनोव्यथा को
है मुझ-सा अपनाया ?
किसने अपनी उर पीड़ा से
मुझ-सा प्यार बढ़ाया ?

सरल न था इस उर पीड़ा को
पा जाना, वर लेना,
इसको अपनाने का मुझको
मूल्य पड़ा था देना।

मानव हँसे, देवगण रोए
देख इसे अपनाते,
हास - अश्रु से दूर मत्तता
में हम थे मदमाते।

पागल सब संसार कह उठा
स्वर्ग कह उठा ज्ञानी,
भाग्य-पटल पर विधि ने लिख दी
कवि की जटिल कहानी।

हितू विश्व ने बहुत मुझे
समझाया, बहुत बुझाया,
लेकिन मेरे कवि मन को यह
पीड़ा का पथ भाया।

मिले प्रलोभन भाँति - भाँति के
मैंने इसे न छोड़ा,
ऐश्वर्य से, वैभव से, सुख
से अपना मुख मोड़ा।

इसको छोड़ न बन सकता था
नृपति छत्र शिर धारी,
इसे लगा कर हृदय, मस्त हूँ
बनकर एक भिखारी।

इस वेदना, व्यथा, पीड़ा में
क़ितना आकर्षण है!
यह मेरे कवि - मन की कितनी
संपति कितना धन है!

मैंने अपनी मनोवेदना
को कितना दुलराया।
मैंने अपनी उर पीड़ा का
कितना नाज़ उठाया।

प्रणय - वृक्ष की मिलन डाल में
अनुपम और निराला,
सुधियों के सुकुमार तार का
मैंने झूला डाला।

चिर वियोग का डाल पालना
उसपर इसे सुलाया,
उच्छ्वासों की पेंगें भर-भर
इसको नित्य झुलाया।

स्वप्निल आशाओं की लोरी
इसको नित्य सुनाई,
हिचकी की दे-देकर थपकी
इसकी नींद बुलाई।

इस आँसू के साथ मुझे दो
रहने आज अकेला,
शोक प्रदर्शन की न घड़ी यह
मेरे सुख की बेला।

माली से

उठ न सका तेरी अंजलि तक
क्या कहता, अभिमान किया,
माली तू मेरी लघुता से
सदा रहा अनजान किया।

हाथ मिले होते डालों से
तो मैं कर उनका विस्तार,
करता रहता सिर पर तेरे
अपने सुमनों की बौछार।

पौधों का भी यदि ऊँचापन
लिख देता विधि मेरे भाल,
पकड़ चूमता हाथ न तेरा
होता तेरा उचित मलाल।

रूप रहित सौरभ विहीन मैं
घासों का हूँ लघुतम फूल,
पहुँचूँ मैं तेरी शुभ अंजलि,
स्वप्न न देखा मैंने भूल।

क्या समझेगा, जब तू चुनता
कलि कुसुमों को उपवन घूम,
माली कितना हर्षित होता
तब मैं तेरे प्रिय पद चूम।

कवि का हृदय

हर तारे को मैंने दी है
अपने उर की आग,
फिर भी मुझमें एक अखंडित
ज्वाल रही है जाग।

मेरा ही आँसू ले बरसा
पावस का हर बिंदु,
फिर भी उर में लहराता है
एक असीमित सिंधु।

मेरी आहों को ले बहता
रहता नित्य समीर,
फिर भी एक उसाँस निकलती
प्रतिपल उर को चीर।

प्रति रजकण में मेरी आशा
एक पड़ी हो चूर्ण,
फिर भी कितनी अभिलाषाओं
से मेरा उर पूर्ण।

प्रति विहंग स्वर में मुखरित हो
बिखरा मेरा गान,
फिर भी गूँज रहा है उर में
गायन एक महान।

मेरे जीवन का सूनापन
ले फैला आकाश,
कितने सूनेपन का फिर भी
मेरा उर आवास।

इतने अनल, अनिल, जल, स्वप्नों
गीतों का ले भार,
शून्य हृदय है, कैसे इसको
समझेगा संसार।

अपने उर की विशद विषमता
सका न मैं ही जान,
जगती तो संकीर्ण हृदय से
करती है अनुमान।

आकर्षण

पुरुष - प्रकृति के आकर्षण से
नवल सृष्टि ने जन्म लिया,
जीव - जीव के आकर्षण ने
जगती - तल को बसा दिया।

मानव - मानव के आकर्षण
से समाज विस्तार हुआ,
और समाजों के आकर्षण
से निर्मित संसार हुआ।

आकर्षण के बल पर ही तो
सूर्य देव हैं खड़े हुए,
परिक्रमा शशि भू की करता
नभ में तारे जड़े हुए।

अंतरिक्ष में निराधार यह
पृथ्वी कैसे टिक पाती,
आकर्षण की शक्ति न इसके
यदि कण-कण में दी जाती।

आकर्षण से ही सागर से
उठ बादल नभ में जाते।
आकर्षण से ही वे अगणित
बूँदें भू पर बरसाते।

आकर्षण से ही सरिताएँ
और सरोवर भर जाते,
आकर्षण से ही तो बहते
नद-नाले जल-मद माते।

आकर्षण से वायु प्रवाहित,
सिंधु तरंगित हो पाता,
आकर्षण से शब्द गगन में
गूँज - गूँज आता जाता।

हृदय - हृदय के आकर्षण में
प्रेम रूप धारण करता,
सौकुमार्य, सौंदर्य सभी में
केवल आकर्षण भरता।

रूप न होता, रंग न होता,
और न कुछ सुषमा होती,
आकर्षित करने की अपनी
शक्ति अगर जगती खोती।

आकर्षण से भरा हुआ है
जगती का कोना - कोना,
जीवन का यह मूल तत्त्व है
आकर्षित करना, होना।

इच्छा का आकर्षण जग में,
आशा का आकर्षण है,
है कितना सुकुमार अरे यह
पर कितना दृढ़ बंधन है।

किसको जीवन अच्छा लगता,
किसको प्रिय न मरण होता,
यदि न जगत में सबका कोई
अपना आकर्षण होता।

इसी अगोचर बंधन में बँध
मानव जग में रहता है,
जग के कुछ आकर्षण से ही
जीवन के दुख सहता है।

दिवाली

जगमग - जगमग करती आई
जग में आज दिवाली है,
भवन - भवन में उजियाला है,
गली - गली उजियाली है।

वसुंधरा ने आज निशा में
ऐसी क्या निधि पा ली है,
जिसकी इतने दीप जलाकर
की जाती रखवाली है।

या की लक्ष्मी के स्वागत की
वसुधा ने तैयारी है,
गई आरती अगणित दीपों
की जो आज सँवारी है।

या तारक-से दीप जलाकर
पृथ्वी अपने आँगन में,
होड़ सोचती है करने को
नभ मंडल से निज मन में।

या अवनी की यौवन छवि से
आज गगन मोहित होकर,
बाहुपाश में भर लेने को
उतर पड़ा है पृथ्वी पर।

या दीपों ने मिलकर कोई
खेल नया यह खेला है,
पर्व मनाने को या कोई
दीपों का यह मेला है।

भाँति - भाँति से जगती सोचे
पर मन कहता अपना है,
किसी शलभ का चिर आकांक्षित
सत्य गया हो सपना है!

भिखारी के गीत

भिखारी, कैसे तेरे गान?
कौन क्षुधा ने तुझे सताया,
कौन पिपासा ने तड़पाया,
जो इस जग-बस्ती में आया लेने भिक्षा दान?

भिखारी, सुनकर तेरे गान—
सागर जल-अंजलि भर लाया,
शस्यपूर्ण निज हाथ बढ़ाया
बसुधा ने, कम हुआ न तेरा पर आतुर आह्वान!

तुझे दुनिया न सकी पहचान,

जल ने इसकी प्यास बुझाई,

तृप्ति अन्न से इसने पाई,

तेरी क्षुधा-पिपासा का कब मर्म सकी यह जान।

भिखारी कैसे तेरे गान?

हैं अनंत तृष्णा से आकुल,

हैं आदर्श बुभुक्षा व्याकुल,

यह सीमित, वास्तविक विश्व—वह संबल! क्या अज्ञान!

यहाँ क्या पाएगा नादान,

शांत क्षुधा पर तेरी होगी,

मान कहा यदि मेरा योगी,

दे अपने को मिटा लुटाकर अपना जीवन-गान।

करे जगती [उनका संमान?

जगती क्या ले इन्हें करेगी,

कहाँ पात्र जो इन्हें धरेगी,

रचे गए हैं नहीं इन्हें सुन सकने वाले कान।

भिखारी ले मेरा वरदान—
जीवन की अंतिम सीमा पर,
जहाँ सभी मिट जाता जाकर,
जहाँ न देश न काल वहाँ पर गूँजें तेरे गान।

मातृ मंदिर

मा तेरे विशाल मंदिर में
कोई आता शंख बजाता,
कोई उच्च स्वर से गाता,
कोई हँसता या मुसकाता,
किंतु मौन-विस्मित मैं आऊँ।

मा तेरे विशाल मंदिर में
शीश उठाकर कोई आता,
कोई वक्ष विशाल फुलाता,
कोई लंबे पाँव बढ़ाता,
किंतु भीत-कंपित मैं आऊँ।

मा तेरे विशाल मंदिर में
कोई आता ध्वज फहराता,
कोई घन - घंटे घहराता,
कोई आता शोर मचाता,
किंतु शांत-विचकित मैं आऊँ।

मा तेरे विशाल मंदिर में
कोई धन इच्छा से आता,
कोई यश पर आँख लगाता,
कोई सुख को ध्येय बनाता
मैं निष्काम भाव से आऊँ।

मा तेरे विशाल मंदिर में
कोई क्षण दो क्षण को आता,
कोई घड़ियाँ चार बिताता,
कोई दो दिन मन बहलाता,
पर मैं अटल समाधि लगाऊँ।

माली

हे जीवन - उपवन के माली !

बतला दे किस पागलपन में

इसे लगाना सोचा मन में

संसृति के विस्तृत आँगन में

और लगाकर शक्ल छिपा ली ।

हे जीवन - उपवन के माली !

अपने केवल क्षण की क्रीड़ा

से जीवन भर पाते पीड़ा,

देख इसे क्या आई व्रीड़ा,

तुझे इसी से शक्ल छिपा ली ?

हे जीवन - उपवन के माली !

लगा इसे फिर कभी न सींचा,

पितृ - स्नेह ने कभी न खींचा,

मेरी आँखों में तू नीचा;

व्यर्थ पिता की पदवी पाली ।

हे जीवन - उपवन के माली!

नव उमंग के पल्लव आते,
चिंता - कीट उन्हें खा जाते,
सूने डंठल - डाल बनाते
और फलों की बात निराली।

हे जीवन - उपवन के माली!

निष्फल तेरा सारा उपवन,
निष्फल डालें, निष्फल द्रुमगण,
कलि पुष्पों का व्यर्थ आगमन,
निष्फल उपवन की हरियाली।

हे जीवन - उपवन के माली!

अभिलाषा कलियों में खिलतीं,
एक घड़ी लिखने को मिलती,
पा समीर के झोंके हिलती,
गिरती भूमि छोड़कर डाली।

हे जीवन - उपवन के माली!

सुख के फूल डाल पर आते,
देर न उनको लगती जाते,
निस्सहाय होकर मुर्झाते,
गिरा उन्हें फिर देती डाली।

हे जीवन - उपवन के माली!

आशा - वसंत निराशा - पतझड़
जाते इसके उपवन में लड़,
अंतहीन इस वैमनस्य - जड़
से ऊबी है डाली - डाली।

हे जीवन - उपवन के माली!

दुर्दिन के व्याधे हैं आते,
घटनाओं का जाल बिछाते,
आशा के विहंग फँस जाते,
उनसे कौन करे रखवाली!

हे जीवन - उपवन के माली!

हमने भी है बाग़ लगाया,
पर है सींचा और सजाया,
सारा उसपर ध्यान लगाया,
उसमें मुझसे बढ़कर लाली!

हे जीवन - उपवन के माली!

सर्व शक्तिमय तू कहलाता,
तुझमें कोई त्रुटि न बताता,
तू उज्ज्वल को ज्वलित बनाता,
तेरी यह त्रुटिमय कृति काली।

हे जीवन - उपवन के माली !

मानव हम हैं तुच्छ - तुच्छतर,
फिर भी कितने स्वप्न मनोहर
देखें जीवन के निशि बासर,
हाथ शक्ति से केवल खाली ।

हे जीवन - उपवन के माली !

सत्य एक उनमें से पाते
यदि कर हम, तुझको सिखलाते,
कैसे बाग़ लगाए जाते,
कैसे की जाती रखवाली ।

हे जीवन - उपवन के माली !

तेरा स्वप्न और भी सुंदर
होगा, रचना शक्ति पास, पर
रचा न वैसा जीवन क्योंकर,
कबकी तूने कसर निकाली ।

हे जीवन-उपवन के माली—

कह-कहकर कवि किसे बुलाता,
किसके ऊपर दोष लगाता,
ताने - तिस्ने किसे सुनाता,
यह उपवन माली से खाली ।

'हे जीवन - उपवन के माली'—

कबसे दुनिया रटती आई,
उत्तर - ध्वनि किसने सुन पाई,
स्वयं बाटिका यह उग आई,
इसकी है उत्पत्ति निराली।

हे कविता - उपवन के माली;

क्यों माली की रटन लगाता,
क्यों जग - उपवन दोष दिखाता,
तुझसे इस जग से क्या नाता,
तूने अपनी सृष्टि बनाली।

सुमन चयन

जिन सुमनों की जीवन सीमा
प्रातः - सायं काल !
उसे - संकुचित करे वही जो
क्रूर, कठोर, कराल।
विश्व उसे संकुचित बनाता
उसका मन पाषाण,
कब उसने समझा फूलों में
भी होता है प्राण ?

पर तेरा मन है कलियों-सा
मृदुल और सुकुमार
तूने कैसे किया कुसुम के
ऊपर आज प्रहार ।

सुमनों ने शैशव समाप्ति पर
कली - अंक को त्याग
दिया, किया स्वागत यौवन का
ले रस, रंग, पराग ।

खोल पँखुरियों से अधरों को
किया सुगंधित गान,
बढ़ती गई सुमन सुंदरता
बढ़ता गया गुमान ।

पर पा गए सुमन गण अपना
जब संपूर्ण विकास,
रह न गया कुछ दिखलाने को
क्रीड़ा - कला - विलास,

फैला दीन अधर पंखुरियाँ
बोल उठे जी छोड़—
'अरे बिखरने ही वाले हैं
कोई तो लो तोड़।'

किसने निर्दयता दिखलाई
तोड़ कुसुम सुकुमार,
कर न सका अनसुनी कुसुम की
आतुर - करुण पुकार।

अभी अधखिले फूलों - सा हूँ
भरा हृदय में मान,
जीवन-सार यही लगता है,
रचना गाना गान।

राग पवन पर फैला देना
उनको गंध समान;
निज रजकण का स्वर्ण कणों-सा
ही करना संमान।

अपनी भावुकता के रस का
करना निशिदिन पान,
'निज मादकता के आगे भी
कुछ ?'—मत करना ध्यान।

यौवन के रँग में रँगरलियाँ
करना सहित उमंग,
अपने रंग समक्ष समझना
सबका हल्का रंग।

क्या जब पूर्ण प्रफुल्लित हूँगा
भूलेगी सब शान ?
'कोई मुझे तोड़ ले', होगा
केवल यह अरमान ?

सुमनों के तो लिए मिला मैं
उनकी सुनी पुकार,
की उनकी अभिलाषा पूरी
करके उनको प्यार।

क्या सुनकर मेरी भी कोई
सहृदय, आर्त पुकार,
आएगा जीवन के अंतिम
क्षण में करने प्यार ?

पांचजन्य

रे पांचजन्य, कर पुनः गान !
यह मृतकों का-सा हुआ देश,
बिसराकर अपना वीर-वेश,
सब शौर्य - शक्ति हो गई नष्ट,

बस कायरता रह गई शेष,
बजकर अतीत से एक बार
दे सब के अंदर फूँक प्राण।
रे पांचजन्य, कर पुनः गान।

जर्जर जीवन का हटे भार,
तन-तन में हो यौवन प्रसार,
जग की डाली के पीत पत्र

गिर पड़ें वेग, आए बहार,
सुन पड़े चतुर्दिक से नूतन
कोकिल-कवियों की नई तान।
रे पांचजन्य, कर पुनः गान।

नूतन युग का हो नया राग,
ले अनिल चले नूतन पराग,
उज्ज्वल अतीत से हों संग
पर जगे हृदय में नई आग,
प्राचीन कीर्ति से हो न तुष्ट
हम रचें नित्य नूतन महान।
रे पांचजन्य, कर पुनः गान।

यह धुन सुनकर सज वीर वेश,
सज्जित हो संयम से अशेष,
हम चलें विश्व को देने को
मानव स्वतंत्रता का सँदेश,
कर्तव्य मार्ग पर दृढ़ रहना,
हो एक ध्येय, हो एक ध्यान।
रे पांचजन्य, कर पुनः गान।

हो पूर्ण विश्व आलस्य हीन,
हों सब सत्कृत्यों में प्रवीण,
हम जन्मसिद्ध अधिकारों को
लें एक दूसरे से न छीन,
पर पाप - शत्रुओं के ऊपर
हो खुली नित्य नंगी कृपाण;
रे पांचजन्य, कर पुनः गान।

तीन रुबाइयाँ

मैं एक जगत को भूला
मैं भूला एक ज़माना,
कितने घटना - चक्रों में
भूला मैं आना - जाना,
पर सुख-दुख की वह सीमा
मैं भूल न पाया साक़ी,
जीवन के बाहर जाकर
जीवन में तेरा आना।

तेर पथ में हैं काँटे
था पहले ही से जाना,
आसान मुझे था साक़ी
फूलों की दुनिया पाना,

मृदु परस जगत का मुझको
आनंद न उतना देता,

जितना तेरे काँटों से
पग-पग पर पद बिंधवाना।

सुख तो थोड़े से पाते
दुख सबके ऊपर आता,
सुख से वंचित बहुतेरे
बच कौन दुखों से पाता,

हर कलिका की क़िस्मत में,
जग - जाहिर, व्यर्थ बताना,

खिलना न लिखा हो लेकिन
है लिखा हुआ मुर्झाना!

———

बच्चन की

अन्य प्रकाशित रचनाओं का विवरण

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

हलाहल

(कवि की नवीनतम रचना)

यह रचना बच्चन ने सन् १९४५ में संपूर्ण की, परंतु इसका आरंभ इससे दस वर्ष पूर्व हुआ था। सन् १९३६ के फ़रवरी मास की सरस्वती में 'हलाहल' के पंद्रह पद निम्नलिखित टिप्पणी के साथ प्रकाशित हुए थे।

'मधुशाला के समान मैं हलाहल पर भी चतुष्पदियों में एक तुक-बंदी लिख रहा हूँ। पूर्ण रचना में संभवतः सौ-सवासौ से ऊपर पद होंगे। अब तक रचे हुए पदों में से कुछ चुनकर सरस्वती के लिए भेज रहा हूँ। यहाँ लिए गए सभी पद अक्रम हैं। पूर्ण रचना पुस्तक रूप में यथा समय प्रकाशित की जायगी।'

और इसके पुस्तक रूप में प्रकाशित होने की नौबत आई है १९४६ में। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह रचना दश वर्ष तक कवि का मानस-मंथन करती रही है! स्वाभाविक ही इसमें उनकी इस लंबी अवधि की भावनाएँ, कल्पनाएँ, आशाएँ, शंकाएँ एवं मान्यताएँ प्रतिबिंबित हुई हैं।

हलाहल में १४८ चतुष्पदियाँ हैं। पर इसको केवल मुक्तकों का संग्रह समझना भूल होगी। और यह बात मधुशाला के संबंध में भी उतनी ही सच है जितनी हलाहल के संबंध में। प्रत्येक पद अपने में संपूर्ण होते हुए भी रचना के उत्तरोत्तर विकास में सहयोग देता है। रचना का मनोरंजक इतिहास देकर तथा अपने एक प्रतिभाशाली मित्र से 'आमंत्रण' लिखाकर कवि ने इसे और भी रोचक बना दिया है। अपनी प्रति शीघ्र मँगा लें।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

बंगाल का काल

(कवि का नवीनतम प्रकाशन)

सन् १९४३ का दुर्भिक्ष जिसमें बंगाल के लगभग आधे करोड़ मनुष्य भूख की विकराल ज्वाला में स्वाहा हो गए, शासकों के निर्दय अत्याचार, पूँजीपतियों की निर्मम स्वार्थपरता और देशवासियों की दयनीय नपुंसकता का प्रतीक बनकर आनेवाली न जाने कितनी सदियों के ऊपर अपनी अमंगल छाया डालता रहेगा।

यह रचना इसी भीषण अकाल के प्रति कवि की प्रतिक्रिया है। यह १९४३ में ही लिखी गई थी, परंतु समय की दमन पूर्ण परिस्थिति में इसे प्रकाशित करना असंभव था। तब इसकी केवल सौ पंक्तियाँ श्रीमती महादेवी वर्मा के 'बंग दर्शन' में छापी जा सकी थीं। अब संपूर्ण रचना जिसमें एक हज़ार से अधिक पंक्तियाँ हैं पुस्तक रूप में प्रकाशित हो गई है।

बच्चन की रचनाओं में 'बंगाल का काल' एक नए प्रकार की चीज़ है। इसमें पहली बार आंतरिक अनुभूतियों के कवि ने अपनी आँख बाहर की ओर फेरी है। यहाँ भी उनकी दृष्टि में मौलिकता है। बंग दुर्भिक्ष पर बहुत कुछ लिखा गया है, परंतु प्रस्तुत रचना में उसके प्रति कवि का अपना मनोवेग है, अपना दृष्टिकोण है और अपने विचार हैं। इस दृष्टिकोण की सार्थकता इतने से ही सिद्ध है कि जेलों से निकलकर हमारे बड़े-बड़े नेता भी उन्हीं स्वरों में बोले हैं जिसमें बचन की वाणी से तीन वर्ष पूर्व मुखरित हो चुकी थी।

इसमें आप बचन के कवि और मानव, दोनों का एक नया ही रूप देखेंगे।

सतरंगिनी

(कवि की नवीन रचना)

यह कवि की १९४२-४४ में लिखित सौंदर्य, प्रेम और यौवन के ५० गीतों का संग्रह है। सौंदर्य, प्रेम और यौवन कवि के लिए नए विषय नहीं हैं। मधुशाला और मधुबाला की पंक्ति-पंक्ति में सौंदर्य की दुर्दम आसक्ति है, प्रेम की अमिट प्यास है और है यौवन का अनियंत्रित उन्माद। पर निशानिमंत्रण के अंधकार और एकांत संगीत के एकाकीपन से निकलकर जब कवि ने पुनः उन विषयों पर लेखनी उठाई है तब उसने केवल एक पिछले अनुभव को नहीं दुहराया। सौंदर्य पर मुग्ध होने वाली आँखों ने जीवन की बहुत कुछ असुंदरता भी देखी है, प्रेम के प्यासे हृदय ने उपेक्षा और घृणा का भी अनुभव किया है और उषा की मुसकान में नहाती हुई काया कितनी बार तिमिर के सागर में डूब-उतरा चुकी है।

मधुशाला और मधुबाला में जो सौंदर्य, प्रेम और यौवन है उसके आगे प्रश्न वाचक चिह्न लगा हुआ है। सतरंगिनी में उनके प्रति अडिग विश्वास है, वे अब केवल व्यक्ति की प्रेरणा मात्र न होकर विश्व जीवन की वह धुरी हैं जिनपर वह युग-युग से घूमता आया है और घूमता जायगा।

बच्चन ने जीवन की मान्यताओं को सहज में ही कभी स्वीकार नहीं किया। उनका यह परिणाम भी स्वानुभव का मूल्य देकर संचित किया गया है, पुस्तक पढ़कर देखिए।

संस्करण समाप्त हो रहा है। देर करने से आपको दूसरे संस्करण की बाट देखनी पड़ेगी।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

आकुल अंतर

(दूसरा संस्करण)

यह कवि की १९४०-४२ में लिखित ७१ गीतों का संग्रह है। कवि को अपनी पिछली रचना 'एकांत संगीत' लिखते समय आभास हुआ था कि उसकी कई कविताएँ आंतरिक अशांति को व्यक्त न करके वाह्य विह्वलता को मुखरित करती हैं। इस कारण भविष्य में उन्होंने अपने गीतों को 'आकुल अंतर' और 'विकल विश्व' दो मालाओं में रखकर आंतरिक और वाह्य दोनों प्रकार की विक्षुब्धता को अलग अलग वाणी देने का निश्चय किया था। दोनों मालाओं के गीत इन तीन वर्षों में पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। इस पुस्तक में कवि ने 'आकुल अंतर' माला के अंतर्गत लिखित ७१ गीतों को संगृहीत किया है।

'एकांत संगीत' से 'आकुल अंतर' में कितना परिवर्तन आया है, यह केवल इस बात से प्रकट हो जायगा कि 'एकांत संगीत' का अंतिम गीत-था 'कितना अकेला आज मैं' और 'आकुल अंतर' का अंतिम गीत है 'तू एकाकी तो गुनहगार'। भावों की किन-किन अवस्थाओं से यह परिवर्तन आया है, इसे देखना हो तो 'आकुल अंतर' पढ़िए। 'निशा निमंत्रण' के अंधकार पूर्ण और 'एकात संगीत' के विषाद मय वातावरण के साथ संघर्ष करके यहाँ पर कवि आपको जग और जीवन के साथ एक बार फिर से नया संबंध स्थापित करता हुआ दिखाई पड़ेगा।

छंद और तुक के बंधनों से मुक्त केवल लय के आधार पर लिखे गए कुछ गीत हिंदी के लिए सर्वथा नवीन और सफल प्रयोग हैं।

दूसरा संस्करण खतम हो रहा है। अपनी प्रति शीघ्र मँगा लें

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

एकांत संगीत

(तीसरा संस्करण)

यह कवि की १९३८-३९ में लिखित एक सौ गीतों का संग्रह है। यह सर्व प्रथम नवंबर, १९३९ में प्रकाशित हुआ था। देखने में यह गीत 'निशा निमंत्रण' के गीतों की शैली में प्रतीत होते हैं, परंतु पद, पंक्ति, तुक, मात्रा आदि में अनेक स्थानों पर स्वतंत्रता लेकर कवि ने इनकी एकरूपता में भी विभिन्नता उत्पन्न की है। विचारों की एकता, गठन और अपने आप में पूर्णता जो 'निशा निमंत्रण' के गीतों की विशेषता थी उसकी यहाँ भी पूरी तरह रक्षा की गई है।

कवि ने जिस एकाकीपन का अनुभव 'निशा निमंत्रण' में मुखरित किया था उसकी यहाँ चरम सीमा पहुँच गई है। 'कल्पित साथी' भी साथ में नहीं है। कवि के हृदय में वेदना इतनी घनीभूत हो गई है कि उसे बताने के लिए वातावरण की सहायता की भी आवश्यकता नहीं होती। गीतों का क्रम रचना-क्रम के अनुसार होने से कवि की भावनाओं का जैसा स्वाभाविक चित्र यहाँ आपको मिलेगा वैसा और किसी कृति में नहीं।

कवि ने जीवन के एकांत में क्या देखा, क्या अनुभव किया, क्या सोचा, यदि इसे जानना चाहते हैं तो एकांत संगीत को लेकर एकांत में बैठ जाइए। जीवन में एक स्थान पर प्रत्येक व्यक्ति एकाकी है। इन गीतों को पढ़ते हुए आप यही अनुभव करेंगे कि जैसे आपके ही जीवन के एकाकी क्षणों के चिंतन और मनन को कवि ने वाणी प्रदान कर दी है। बच्चन की यह विशेषता है कि वह व्यक्तिगत अनुभवों को कला के धरातल पर लाकर सार्वजनीन बना देते हैं।

संस्करण समाप्तप्राय है। अपनी प्रति शीघ्र मँगा लें।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

निशा निमंत्रण

(पाँचवाँ संस्करण)

यह कवि की १९३७-३८ में लिखित एक कहानी और एक सौ गीतों का संग्रह है। यह सर्व प्रथम नवंबर १९३८ में प्रकाशित हुआ था। 'निशा निमंत्रण' के गीतों से बच्चन की कविता का एक नया युग आरंभ होता है। १३-१३ पंक्तियों में लिखे गए ये गीत विचारों की एकता, गठन और अपनी संपूर्णता में अंग्रेज़ी के सॉनेट्स की समता करते हैं। गीतों को लिखने के लिए यह ढाँचा इतना सफल सिद्ध हुआ है कि हिंदी के अनेक नवयुवक कवि आज इसका अनुकरण कर रहे हैं।

'निशा निमंत्रण' के गीत सायंकाल से आरंभ होकर प्रातः-काल समाप्त होते हैं। रात्रि के अंधकारपूर्ण वातावरण से अपनी अनुभूतियों को रंजित कर बच्चन ने गीतों की जो शृंखला तैयार की है वह आधुनिक हिंदी कविता के लिए सर्वथा मौलिक वस्तु है। गीत एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि यह सौ गीतों का संग्रह न होकर सौ गीतों का एक महागीत है, शत दलों का एक शतदल है। प्रत्येक गीत अपने स्थान पर पूर्ण होते हुए रचना के क्रमिक विकास में भी सहायक हैं।

एक ओर तो इनमें प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण है दूसरी ओर हर प्राकृतिक दृश्य के साथ कवि की भावनाओं का ऐसा संबंध दिखाया गया है मानो कवि की भावनाएँ स्वयं उन प्राकृतिक दृश्यों में स्थूल रूप पा गई हैं। सूर्यास्त के साथ कवि की आशाएँ टूट गई हैं। रात के अंधकार में कवि का शोक छा गया है। प्रभात की अरुणिमा में भविष्य का संकेत कर कवि ने विदा ले ली है।

इसका सौंदर्य देखना हो तो शीघ्र ही अपनी प्रति मँगा लीजिए।

मधुकलश

(चौथा संस्करण)

यह कवि की १९३५-३६ में लिखित 'मधुकलश', 'कवि की वासना', 'कवि की निराशा', 'कवि का गीत', 'पथभ्रष्ट', 'कवि का उपहास', 'लहरों का निमंत्रण', 'मेघदूत के प्रति' आदि प्रसिद्धि प्राप्त कविताओं का संग्रह है। यह सर्व प्रथम जुलाई, १९३९ में प्रकाशित हुआ था।

आधुनिक समय में समालोचकों द्वारा बच्चन की कविताओं का जितना विरोध हुआ है संभवतः उतना और किसी कवि का नहीं हुआ। उन्होंने अपने विरोधियों की कटु आलोचनाओं का उत्तर कभी नहीं दिया परंतु उससे जो उनकी मानसिक प्रतिक्रिया हुई है उसे अवश्य काव्य में व्यक्त किया है। उत्तर प्रत्युत्तर में जो बात कटु हो जाती वही कविता में किस प्रकार मधुर हो गई है, 'मधुकलश' की अधिकांश कविताएँ इसका प्रमाण हैं। कवि ने चारों ओर के आक्रमण के बीच किन भावनाओं और विचारों से अपनी सत्ता को स्थिर रक्खा है उसे देखना हो तो आप 'मधुकलश' की कविताएँ पढ़िए। इनके अंदर साहित्य के आलोचकों को ही नहीं जीवन के आलोचकों को भी उत्तर है, कवि के लिए ही नहीं मानवता के लिए भी संदेश है। क्योंकि जिस समय यह कविताएँ लिखी गईं थीं उस समय साहित्यिक संघर्ष के साथ कवि के जीवन में भी संघर्ष चल रहा था और उन्होंने किसी स्थान पर पराजय स्वीकार न करने का दृढ़ व्रत धारण कर लिया था।

इसी पुस्तक के विषय में विश्वमित्र ने लिखा था, 'बच्चन जी की कविताएँ पढ़ते समय हमें इस बात की प्रसन्नता होती है कि हिंदी का यह कवि मानवता का गीत गाता है।'

यह संस्करण भी समाप्त होने को है। अपनी प्रति शीघ्र मँगा लें।

मधुबाला

(छठा संस्करण)

यह कवि की १९३४-३५ में लिखित 'मधुबाला' 'मालिक-मधुशाला', 'मधुपायी', 'पथ का गीत', 'सुराही', 'प्याला', 'हाला', 'जीवन तरुवर', 'प्यास', 'बुलबुल', 'पाटल माल', 'इस पार—उस पार', 'पाँच पुकार', 'पगध्वनि' और 'आत्म परिचय' शीर्षक कविताओं का संग्रह है। यह सर्व प्रथम जनवरी, १९३६ में प्रकाशित हुआ था।

मधुशाला के पश्चात लिखे गए इन नाटकीय गीतों में मधुबाला और मधुपायी ही नहीं प्याला, हाला और सुराही आदि भी सजीव होकर अपना अपना गीत गाने लगे हैं। कवि को मधुशाला का गुणगान करने की आवश्यकता नहीं रह गई, वह स्वयं मस्त होकर आत्म-गान करने लगी है। जिस समय यह गीत लिखे गये थे उस समय 'हाला', 'प्याला', 'मधुशाला' के रूपक हिंदी में नए ही थे, फिर भी कवि ने उन्हें अपने कितने भावों, विचारों और कल्पनाओं का केंद्र बना दिया है इसे आप गीतों को पढ़कर स्वयं देख लेंगे। इन गीतों में आप पाएँगे विचारों की नवीनता, भावों की तीव्रता, कल्पना की प्रचुरता और सुस्पष्टता, भाषा की स्वाभाविकता, छंदों का स्वच्छंद संगीतात्मक प्रवाह और इन सब के ऊपर वह सूक्ष्म शक्ति जो प्रत्येक हृदय को स्पर्श किए बिना नहीं रह सकती कवि का व्यक्तित्व। इन्हीं गीतों के लिए प्रेमचंदजी ने लिखा था कि इनमें बच्चन का अपना व्यक्तित्व है, अपनी शैली है, अपने भाव हैं और अपनी फ़िलासफ़ी है।

'मधुशाला' की रुबाइयों के लिए आलोचकों ने प्रायः कहा है कि वह उर्दू साहित्य की परंपरा का अनुकरण है। परंतु 'मधुबाला' में जिस प्रकार के गीत कवि ने लिखे हैं वे सर्वथा मौलिक हैं। फुटकर शेरों और रुबाइयों में विषयों की भरमार होने पर भी उन्होंने उर्दू में कभी गीतों का रूप नहीं धारण किया।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

मधुशाला

(सातवाँ संस्करण)

यह कवि की १९३३-३४ में लिखित १३५ रुबाइयों का संग्रह है। यह सर्व प्रथम अप्रैल सन् १९३५ में प्रकाशित हुआ था। हाला, प्याला, मधुबाला और मधुशाला के केवल चार प्रतीकों और इन्हीं से मिलने वाले कुछ गिनती के तुकों को लेकर बच्चन ने अपने कितने भावों और विचारों को इन रुबाइयों में भर दिया है इसे वे ही जानते हैं जिन्होंने कभी मधुशाला उनके मुँह से सुनी या स्वयं पढ़ी है। आधुनिक खड़ी बोली की कोई भी पुस्तक मधुशाला के समान लोकप्रिय नहीं हो सकी इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। अब समालोचकों ने स्वीकार कर लिया है कि मधुशाला में सौंदर्य के माध्यम से क्रांति का ज़ोरदार संदेश भी दिया गया है।

कवि ने इसे 'रुबाइयात उमर ख़ैयाम' का अनुवाद करने के पश्चात् लिखा था इस कारण वे उसके बाहरी रूपक से प्रभावित अवश्य हुए हैं परंतु यह भीतर से सर्वथा स्वानुभूत और मौलिक रचना है जिसकी प्रतिध्वनि प्रत्येक भारतीय युवक के हृदय से होती है।

भाव, भाषा, लय और छंद एक दूसरे के इतने अनुरूप बन पड़े हैं कि हिंदी से अपरिचित व्यक्ति भी इसका वैसा ही आनंद लेते हैं जैसा कि हिंदी से सुपरिचित व्यक्ति। आज ही इसे लेकर बैठ जाइए और इसकी मस्ती से झूम उठिए।

स्वर्गीय प्रेमचंद जी ने पुस्तक की आलोचना करते हुए लिखा था कि "मधुशाला हिंदी में बिलकुल नई चीज़ है; यह श्रेय बच्चन को ही है कि हिंदी साहित्य में उन्होंने मधुशाला भी सजा दी।" इतना हम और कहेंगे, आप चाहे जितनी बार इसको पढ़ें हर बार आप को यह नई ही लगेगी।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रा० दू० १०

ख़ैयाम की मधुशाला

(तीसरा संस्करण)

यह फिट्ज़जेराल्ड कृत रुबाइयात उमर ख़ैयाम का पद्यात्मक हिंदी रूपांतर है जिसे कवि ने सन् १९३३ में उपस्थित किया था। मूल पुस्तक के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। इसकी गणना संसार की सर्वोत्कृष्ट कृतियों में है। अनुवाद में प्रायः मूल का आनंद नहीं आता, परंतु बच्चन के अनुवाद में कहीं आपको यह कमी न दिखाई पड़ेगी। वे एक शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द रखने के फेर में नहीं पड़े। उन्होंने उमर ख़ैयाम के भावों को ही प्रधानता दी है। इसी कारण उनकी यह कृति मौलिक रचना का आनंद देती है।

स्वर्गीय प्रेमचंद जी ने जनवरी '३६ के 'हंस' में पुस्तक की आलोचना करते हुए लिखा था कि 'बच्चन ने उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का अनुवाद नहीं किया ; उसी रंग में डूब गए हैं।' हिंदी में पुस्तक के और अनुवाद भी हैं पर 'लीडर' ने स्पष्टतया लिखा था कि:—

.........Bachchan has a great advantage over many translators in that he himself feels, for all we know, very much like the poet astronomer of Nishapur.

इस संस्करण में पहली बार अनुवाद के साथ-साथ मूल अंग्रेज़ी, और कवि लिखित सार-गर्भित भूमिका और टिप्पणी भी दी गई है। यदि आप अंग्रेज़ी से भिज्ञ हैं तो अनुवाद की सफलता को आप स्वयं देख सकेंगे।

यदि आपने पहले-दूसरे संस्करण देखे भी हैं तो हम आपसे इसे पढ़ने का अनुरोध करेंगे।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रारंभिक रचनाएँ—पहला भाग

(दूसरा संस्करण)

बच्चन की प्रारंभिक रचनाओं का प्रथम संग्रह 'तेरा हार' के नाम से सन् '३२ में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद उनकी दूसरी पुस्तक 'मधुशाला' सन् '३५ में प्रकाशित हुई। इन दोनों पुस्तकों में विचार-धरा तथा कवित्व की दृष्टि से बहुत अंतर था जिससे साधारण पाठक तथा आलोचक दोनों विस्मित थे। इस रहस्य का कारण था कवि की लिखी बीच की कविताओं का प्रकाश में न आना। आज जब उनकी कविताएँ लाखों पाठकों द्वारा पढ़ी जाती हैं और कवि के प्रति उनका सहज प्रेम है तब यह आवश्यक समझा गया कि उनकी बीच की कविताओं का प्रकाशन भी किया जाय। इसी विचार के अनुसार 'तेरा हार' में उसके बाद की २३ और कविताएँ संमिलित कर 'प्रारंभिक रचनाएँ' का पहला भाग प्रकाशित किया गया है। इस पुस्तक का दूसरा भाग भी प्रकाशित हो गया है जिससे कि 'मधुशाला' तक की लिखी सब रचनायें पाठकों के सामने आ गई हैं।

यद्यपि यह बच्चन की प्रारंभिक रचनाएँ हैं, फिर भी सभी पत्र-पत्रिकाओं ने इनकी प्रशंसा की है। बच्चन की कविताओं का क्रम-विकास समझने के लिए इसे देखना बहुत आवश्यक है।

पर इन कविताओं की महत्ता केवल ऐतिहासिक ही नहीं है। भावना की दृष्टि से भी इनके अंदर वह सचाई है जो अपने को प्रकट करने के लिए किसी कला की प्रौढ़ता की प्रतीक्षा नहीं करती।

बच्चन की समस्त रचनाओं में जो उनके व्यक्तित्व की एकता है, इसके कारण आप उनकी नई रचनाओं का आनंद तभी ले सकेंगे जब उनकी प्रारंभिक रचनाओं से भी आप अच्छी तरह भिज्ञ हों।

लीडर प्रेस, इलाहाबाद